CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

वर्ष ५३ : अंक ८ : आषाढ : २०२९

स्वामी— स्वाध्याय-मंडल, पारडी [जि. बलसाड]

संस्थापक एवं आद्यसंपादक
श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

संपादक
वसंत श्रीपाद सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

卐

किस देवताकी उपासना करें?	[वैदिक प्रार्थना]	११५
सृष्टिका विधान	श्री श्रीमां	११६
चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यकी स्थापना और महर्षि दयानन्द	वेदपथिक धर्मवीर श्री आर्य झंडाधारी	११९
रामायणमें चर्चित महिलाएँ	श्री वा. विष्णुदयाल	१२३
अजपाजप या अजपा गायत्री	श्री श्रीराम माधव चिंगले	१२६
आसन	श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर	९७ से १०४
ऋग्वेदका सुबोध भाष्य	श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर	१ से १६

पूज्य पंडितजीके चतुर्थ श्राद्धदिनके समयपर हम उनके पूज्य स्मृतिको भावपूर्ण विनम्र सादर अभिवादन करते हैं। —संपादक

' वैदिक धर्म ' वार्षिक मूल्य म. आ. से ६) रु.

वी. पी. से रु. ७.५० विदेशके लिए रु. ८.०० डाक व्यय अलग रहेगा।

इस अंकमें प्रसिद्ध किये गये लेखकोंके लेखोंमेंके मतों और विचारोंसे संपादक सहमत है ऐसा नहीं है। उन लेखोंमेंके विचारोंके लिये केवल लेखकही व्यक्तिशः उत्तरदायी हैं।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.– ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. बलसाड]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

[छप गया

चिर प्रतीक्षित]

पण्डित सातवलेकर-जीवन-प्रदीप

मूल लेखक

श्री पु. पां. गोखले

अनुवादक

श्रुतिशील शर्मा

वेदमहर्षि पं. श्री. दा. सातवलेकरके जिस जीवनचरित्रकी प्रतीक्षा बहुत दिनोंसे की जा रही थी, वह अब छपकर तैय्यार हो गया है।

इस ग्रन्थमें उनके जीवनके हर पक्षको प्रस्तुत किया गया है। उपन्यासकी शैलीसे लिखा गया यह ग्रन्थ पठनीय और संग्रहणीय है।

उत्तम कागज, उत्तम छपाई, मुखपृष्ठ पर पण्डितजीका तीनरंगी आकर्षक चित्र, आकर्षक डेमी साइज, पृष्ठ– ३१५, मूल्य– १०)।

प्रतियां बहुत सीमित हैं। आज ही मंगा लें।

इस ग्रन्थ पर १५% कमीशन दिया जायेगा। आज ही अपना ऑर्डर भेजें।

स्वाध्याय मण्डल, पारडी
जि. बलसार
(गुजरात)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

किस देवताकी उपासना करें ?

श्री हरिवंश प्रसाद [illegible] गौँसकोटा,
ऋषि निवास' [illegible],
ललितपुर, काठमाण्डू (नेपाल)

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्वे॒
उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः ।
यो॒३ऽस्येशे॑ द्वि॒पदो॒ यश्चतु॑ष्पद॒ः
कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥

(अथर्व. ४-२-१)

(कस्मै देवाय हविषा विधेम ?) किस देवताकी समर्पण द्वारा हम सब पूजा करें ? (यः आत्मदाः बलदाः) जो आत्मिक बल देनेवाला और अन्य सब बल देनेवाला है, तथा (यस्य प्रशिषं विश्वे देवाः उपासते) जिसकी आज्ञा सब देव मानते हैं, और (यः अस्य द्विपदः, यः चतुष्पदः ईशे) जो इस द्विपाद और चतुष्पादका स्वामी है । इसीकी पूजा सबको करनी योग्य है ।

किस देवताकी हम पूजा करें ? जो देव आत्मिक बल देनेवाला है, तथा जो अन्य बल भी देता है, जिसकी आज्ञाका पालन संपूर्ण अन्य देव करते हैं, जो द्विपाद और चतुष्पादोंका एक मात्र प्रभु है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्री श्रीमां, श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी

श्रीमाताजीकी बात-चीत--

सृष्टिका विधान

प्र० आप कहती हैं : 'बहुतसे स्रष्टाओंने, बरन् रूपकारों या रूपनिर्माताओंने जगत्के सृष्टिकार्यमें भाग लिया है।' ये रूपकार कौन हैं ?'

उ० यह कई बातोंपर निर्भर करता है। लोगोंने उनके अनेक नाम दिये हैं। सब कुछ एक सोपानके क्रमसे तथा अनेकों प्रकारके व्यक्तित्वोंके माध्यमसे हुआ। प्रत्येक स्तरपर सत्ताओं, व्यक्तियों और व्यक्तित्वोंका वास है और प्रत्येकने अपने चारों ओर एक दुनिया बना ली है अथवा कुछ सत्ताओंके निर्माणमें भाग लिया है। सबसे पीछेके स्रष्टा प्राण जगत्के स्रष्टा हैं, किंतु अधिमानस लोककी, जिसे श्रीअरविन्दने 'ओवर माइंड' कहा है, सत्ताएं भी हैं, जिन्होंने सृष्टि की है, रूप दिया है, जिन्होंने अपने भीतरसे विभूतियां निकालीं, और फिर इन पिछली विभूतियोंने अपने भीतरसे विभूतियां निकालीं, और इस प्रकार क्रम चलता रहा। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि भागवत संकल्पने सीधे क्रिया नहीं की, यों कहिए कि उसने जगत्की परतों, स्तरोंके भीतरसे क्रिया की, जैसे कि मानस स्तरसे-अनेकों ऐसी मानसिक सत्ताएं हैं जो रूपकार हैं, जिन्होंने पृथ्वीपर जन्म लेनेवाली कुछ सत्ताओंके निर्माणमें भाग लिया। प्राणिक जगत्में भी यही बात है।

उदाहरणार्थ, एक परंपराके अनुसार कीडोंका सारा जगत् प्राण जगत्के रूपकारोंका कारनामा है, और इसलिये जब हम उन्हें सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे बडा करके देखते हैं तब वे दानवों जैसा दिखलायी पडते हैं। उस दिन जो पानीके कीटाणुओंको दिखलाया गया था, वह तुमने देखा था न ? स्वभावतः, वे चित्र मन बहलावके लिये बनाये गये थे, किंतु वे वास्तविक रूपोंपर आधारित हैं, जिन्हें उतना बडा कर दिया गया था कि वे दानव बन गये थे। कीडोंका प्रायः सारा जगत् छोटे-छोटे दानवोंका जगत् है, जो यदि आकारमें बडे होते तो बडे भयावने लगते। अतः लोग कहते हैं कि वे प्राण जगत्की सत्ताएं हैं, प्राण जगत्के जीव, जिन्होंने मन बहलावके लिये ऐसे असंभव जंतु बनाये जो मनुष्यका जीवन बिलकुल अप्रिय बना देते हैं !

प्र० क्या ये मध्यवर्ती सत्ताएं भी भागवत शक्तिसे निकली हैं ?

उ० मध्यवर्ती सत्ताओंके माध्यमसे, हां, सीधे नहीं। ये सत्ताएं भगवान्के सीधे संपर्कमें नहीं हैं (कुछ अपवाद भी हैं, मैं सामान्य नियम बतला रही हूं) ये सत्ताएं दूसरी सत्ताओंके संपर्कमें, ये दूसरी फिर अन्य सत्ताओंके संपर्कमें, और ये पिछली फिर अन्य सत्ताओंके संपर्कमें, और ऐसे क्रम ऊपर उठता सर्वोच्च सत्तातक पहुंचता है।

प्र० यदि वे भगवान्से निकली हैं तो वे बुरी क्यों हैं ?

उ० बुरी ? यह तो, मेरा खयाल है, मैं तुम लोगोंको एक बार समझा चुकी हूं। भगवानके प्रभावके सीधे संपर्कमें न रहना, और भगवान् जैसा चाहते हैं वैसा, सृष्टि और विकासकी गतिका अनुसरण न करना, ऐसा होनेके लिये पर्याप्त है; बडीसे बडी ज्योतिर्मयी, शक्तिशाली सत्ताएं भगवान्की गतिका अनुसरण न कर स्वयं अपनी गतिका अनुसरण करनेका निर्णय ले सकती हैं। और ये यदि अपने आपमें अत्यंत विलक्षण भी हों, और मनुष्य यदि इन्हें देखें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो भगवान् ही समझ बैठें, तो भी, क्योंकि ये विश्वके साथ समस्वर होकर क्रिया करनेकी जगह अपनी इच्छाका अनुसरण करती हैं, ये बडीसे बडी बुराइयोंका, अव्यवस्थाओंका और सामूहिक रूपसे बडीसे बडी बाधाका उत्स बन सकती हैं। यहांपर प्रश्न ठीक तरीकेसे पूछा नहीं गया है। अभी इसे पढते समय मुझे हंसी आ गयी। यह कहनेका बचगाना तरीका है। वह व्यक्ति कहता है : 'यदि भगवान् ही सब कुछ है तो दुनियामें बुरी वस्तुएं क्यों हैं ?' यदि, वह मुझसे यह कहे होता तो मैं यही उत्तर देती : ऐसा कुछ भी नहीं जो भगवान न हो, बस इतनी ही बात है कि वह अव्यवस्थाकी अवस्थामें है। इसके उपचार करनेकी चेष्टा करनी होगी— भगवान् केवल प्रेम ही नहीं हैं, वे सब कुछ हैं, और यदि यह हम लोगोंको बुरा लगता है तो इसलिये कि यह ठीकसे व्यवस्थित नहीं है। ठीक उस तरहकी बातें घटीं जैसी मैं कह आयी हूं।

कोई पूछ सकता है कि ऐसा क्यों हुआ। ऐसा क्यों हुआ, इसका उत्तर मन तो निश्चय ही नहीं दे सकता। ऐसा हुआ, बस इतना ही। वस्तुतः हमें जिस बातसे मतलब है वह यहि कि यह हुआ। शायद यह प्रारंभके लिये एक दुर्घटना थी...। यदि हम इस वस्तुको दार्शनिक दृष्टिकोणसे देखें तो यह स्पष्ट है कि जिस विश्वमें हम रहते हैं वह अनेकों जगतोंमेंसे एक है और यह जगत् अपने निजी विधानका अनुसरण करता है (और शायद यही नियम दूसरे जगतोंमें नहीं है), और यदि भगवान्की इच्छा थी कि दुनिया चुनावके सिद्धांतपर सृष्ट हो, चुनावकी स्वतंत्रतापर, जबतक ज्ञान न आ जाय और चुनाव आलोकित होजाय तबतक अव्यवस्थित गतियोंकी उत्पत्तिको रोका नहीं जा सकता। यदि तुम चुनाव करनेके लिये स्वतंत्र हो तो यह आवश्यक नहीं कि तुम अच्छी वस्तुएं ही चुनो, तुम बुरी वस्तुएं भी चुन सकते हो, क्यों कि यदि यह पहलेसे ही निश्चित हो तो वह स्वतंत्र चुनाव नहीं होगा। जब तुम इस प्रकारके प्रश्न पूछते हो तो उत्तर केवल मन देता है, और वह समस्याकी गुरुताको घटा देता है, वह उसे थोडा या बहुत प्रारंभिक मानसिक सूत्रका रूप दे देता है, किंतु वह वस्तुओंके सत्यके साथ अत्यंत अस्पष्ट और अत्यंत सतही तथा अपूर्ण रूपसे मेल खाता है।

किसी वस्तुको समझनेके लिये वही बन जाना पडता है। यदि तुम विश्वका क्यों और कैसे जानना चाहते हो तो तुम्हें विश्वके साथ तदात्म हो जाना होगा। यह असंभव नहीं है, किंतु यह अत्यंत सरल भी नहीं है, विशेषतः बच्चोंके लिये।

पूछे हुए सबसे बचगाने प्रश्नोंमेंसे एक यह था : 'यदि वह न्यायवान है तो अन्यायका अस्तित्व क्यों है ? यदि वह भला है तो खोटेपनका अस्तित्व क्यों है ? यदि वह प्रेम है तो घृणाका अस्तित्व क्यों है ?' किंतु वह सब कुछ है ! अतः वह केवल 'यह' नहीं है या केवल 'वह' नहीं है अथवा ऐकांतिक रूपमें 'वह' नहीं है— वह सब कुछ है। अर्थात् यदि ठीक ठीक कहा जाय तो कहना पडेगा कि सब कुछ वही है। सृष्टिके विषयमें कुछ धारणाएं दुनियामें बडे व्यापक रूपसे फैली हुई हैं और इन्होंने बडे लंबे कालतक मनुष्यके विचारोंकी थोडी या बहुत स्वीकृति पायी है, ये बडी भोली हैं ! 'कोई वस्तु' है (सच पूछिए तो किसीको पता नहीं कि वह क्या है), और फिर भगवान् हैं जो उस किसी वस्तुको रूप देते हैं और उससे संसार बना लेते हैं। अतः यदि तुम्हारी धारणाएं इस प्रकारकी हैं तो तुम्हें भगवान्से यह पूछनेका न्यायोचित अधिकार है : 'आपने इससे एक संसार बनाया है ! आपका संसार सुंदर है !' यद्यपि कहानीके अनुसार सात दिन काम करनेके बाद उन्होंने घोषित किया कि यह बडा अच्छा है— किंतु यह अच्छा उनके लिये है। सायद इससे उनका काफी मनबहलाव हुआ, किंतु हमलोग, जो इस दुनियामें हैं, हम इसे बिलकुल अच्छा नहीं पाते ! यह इसलिये कि यह धारणा और कहनेका ढंग एकदम बचगाना है। यह तो बिलकुल कुम्हारकी कहानी जैसी है, जो अपने बरतन गढता है— यह भगवान् मानव प्राणी है, अनुपात और शक्तिमें बहुत बडा, किंतु विलक्षण रूपसे मनुष्यसे मिलता-जुलता। यह मनुष्य है जो भगवान्को अपनी आकृति प्रदान करता है, भगवान् मनुष्यको अपनी आकृति नहीं देते ! अतः जब भी कोई अपूर्ण ढंगसे या बचगाने तरीकेसे कोई प्रश्न पूछता है तब उसका सच्चा उत्तर देना असंभव हो जाता है, क्योंकि प्रश्नही ठीकसे नहीं पूछा गया है। तुम कुछ कहते हो, किसी वस्तुपर बल देते हो। किंतु तुम्हें उसपर बल देनेका क्या अधिकार है ? क्योंकि तुम उसपर बल देते हो तुम यह निष्कर्ष निकालते हो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'क्योंकि वह यह है, कैसे वह यह है ?' किंतु 'वह यह है', यह तो तुम कहते हो न, इसका मतलब यह नहीं कि वह वैसा है !

किंतु समस्याका केवल एक, एक मात्र समाधान है, वह हैं, मूलमें भगवान् और विश्वके बीच कोई पार्थक्य न करना। विश्व देशमें प्रक्षिप्त भगवान् हैं, यह एक दूसरे पहलूमें एक ही वस्तु है। और तुम उन्हें विभाजित नहीं कर सकते। यह विचार 'कर्ता' और उनकी 'कृति' के विरुद्ध है। हां, तब कर्ता और कृति कहनेमें आसान होता हैं, वह व्याख्यायें बडा सरल और प्रारंभिक ढंगका बना देता है। किंतु यह सच नहीं है। तब तुम कहते हो : 'ऐसा कैसे कि भगवान्, जो सर्वशक्तिमान् हैं, उन्होंने दुनियाको ऐसा बनने दिया ?' किंतु यह तुम्हारा अपना विचार है। वह इसलिये कि तुम ऐसी परिस्थितियोंके संघातके बीचमें पडे लगते हो, जो तुम्हें अप्रिय लगती हैं, अतः तुम उसे भगवान् पर प्रक्षिप्त करते हो और उनसे कहते हो : 'आपने ऐसी दुनिया क्यों बनायी ?'–'मैंने नहीं बनायी। यह तो तुम हो। और यदि तुम फिर 'मैं' बन जाओ तो तुम जैसा अभी बोध कर रहे हो वैसा फिर बोध नहीं करोगे। तुम जैसा बोध कर रहे हो वैसा बोध करनका कारण है कि तुम तुम अब 'मैं' नहीं रह गये हो" यही उत्तर वे तुम्हें दे सकते हैं। और तथ्य यह है कि जब तुम अपनी चेतनाको भागवत चेतनाके साथ तदात्म कर लेते हो तब तुम्हारे लिये कोई समस्या नहीं रह जाती। सब कुछ बिलकुल स्वाभाविक और सरल और बहुत भला, और ठीक जैसा उसे होना चाहिए वैसा लगने लगता है। किंतु जब तुम मूलसे अपनेको काटकर उनके (भगवान्के) सामने खडे होते हो तो सबकुछ बिगड जाता है, कुछ भी अच्छा नहीं हो सकता !

किंतु यदि तुम किसी ऐसे तर्कका सहारा लेना चाहते हो जो वस्तुओंको उनकी चरम सीमातक ढकेल दे, भगवान्ने अपने अंगोंको अपनेसे अलग हो जाने और इतनी अव्यवस्था की सृष्टि होने क्यों दी ? तुम ऐसा कह सकते हो। और तब मैं तुम्हे उत्तर दूंगीः 'यदि तुम जानना चाहते हो तो अच्छा हो यदि तुम भगवान्के साथ अपनेको तदात्म कर लो, क्यों कि उन्होंने कोई काम क्यों किया, यह जाननेका एकमात्र तरीका यही है' और मैं तुमसे एकबार फिर कहती हूं कि जब तुम यह तादात्म्य प्राप्त करते हो तब सारी समस्यायें हल हो जाती हैं। और यह भावना, कि वस्तुएं अच्छीं नहीं हैं और उन्हें कुछ और तरीकेका होना चाहिए, यह ठीक इसलिये होता है क्योंकि भगवान्की इच्छा निरंतर विकासके भीतर सतत अभिव्यक्ति है, और यह कि जो वस्तुएं पहले कीं उन्हें अपना स्थान उन वस्तुओंके लिये छोड देना होगा जो आगे होंगी और जो पहलेवाली वस्तुओंसे अच्छी होंगी। जो दुनिया विगत कल अच्छी थी, आगामी कल अच्छी नहीं रह जाती। सारी दुनिया, जो किसी समयमें पूर्णतः समंजस्यपूर्ण लग रही होगी, अब बसुरी हो गयी है, वह अब समस्वर नहीं रह गयी, क्योंकि हम एक नूतन संसारकी बात सोचते और उसकी संभावना देखते हैं। यदि हम उसे बहुत अच्छा पाते तो हम वह नहीं करते जो हमें करना चाहिए, अर्थात् उसे अच्छा बनानेका प्रयास नहीं करते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : वेदपथिक धर्मवीर श्री आर्य झंडाधारी

चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यकी स्थापना और महर्षि दयानन्द

विश्व वंदनीय क्रान्तिके अग्रदूत, आर्य समाजके जन्मदाता, वैदिक समाजके स्वनामधन्य नेता, विश्वकी मानवताके परम रक्षक, युग प्रवर्तक, करुणा निधान, भारतको भव्य भावनासे भरनेवाले, वेद ज्ञान गरिमाके उन्नायक, अबला, अनाथोंके करुण क्रन्दनको सुननेवाले, गुरुकुल शिक्षा प्रणालीको प्रचलित करनेवाले, स्वराज्य शब्दके उद्घोषक, शास्त्रार्थोंकी जगत् व्यापी धूम मचानेवाले !

गोकरुण निधि, सत्यार्थं प्रकाश एवं संस्कार विधि जैसे अनमोल जगत् कल्याणकारक ग्रन्थोंको रचनेवाले, वेदोंका पठन पाठन प्रचलित करनेवाले, आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि स्वामी दयानन्दजी महाराजने अपने ग्रन्थ आर्य भिविनयमें स्थान स्थान पर प्रभुसे वेद मंत्रों द्वारा चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यकी कामना और प्रार्थना किये हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्दका उत्तराधिकारी आर्यसमाज है। आर्य समाजको स्थापित हुवे को एक शताब्दि पूरा होने लगा है।

आर्यसमाजने जो भी देश जागरणका, अछूतोद्धारका, विधवा अनाथोंकी रक्षाका, हिन्दीके प्रचारका, गुरुकुल शिक्षा प्रणालीका, स्वराज्यकी स्थापनाका, वैदिक कर्मकान्डों का, शास्त्रार्थोंका, वेद प्रचारका, शिक्षा और साहित्य सीजनका बहुमुखि कार्य किया है, वह स्वतन्त्र भारतके स्वर्ण इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें प्रथम अध्यायमें ही अंकित मैं करना चाहता हूं।

आर्य समाजने ही भारतकी कोटिकोटि महर्षि सन्तानोंको ईसाई और मुसलमान होनेसे बचाया है। महर्षि दयानन्दका उपकार विश्वके मानव मात्र पर है।

आर्य समाजमें एकसे एक सपूत ऐसे हुवे हैं जिनके जिवनको गाथाओंको पढकर मानव देव बन सकते हैं । आर्यजातिका इतिहास तप, त्याग और बलिदानोंका एक मूर्तिमान रूप अनुरुप है। आर्यसमाजका इतिहास आज यह संदेश दे रहा है कि विश्वके मानव समाजको वेद पथ पर अग्रसर करो। विश्वकी मानवताकी रक्षामें अपने आपको समर्पित करो।

चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यकी स्थापना और आर्यसमाज

इस समय देश और विदेशोंमें करोडों महर्षि दयानन्दके सैनिक हैं। वेदधर्मके मतवाले हैं। देश धर्म हित अपना सर्वस्व निछावर कर देनेवाले हैं।

महर्षि दयानन्द स्वामी अकेले ही थे जो जगत्को जगाये थे। आज हम करोडों रहते हुवे महर्षि दयानन्दके अधूरे कार्योंको पूर्ण नहीं कर पा रहे हैं। आओ आज हम आत्म निरीक्षण करें।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने जीवनमें, अपने रोम रोममें आत्म बल और आत्म विश्वास, परमात्मा पर अटल अटूट विश्वास करके प्रबल पुरुषार्थ करें। चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यकी स्थापनाका महाव्रत धारण करो।

यह ध्यान रहे हम चक्रवर्ती साम्राज्यके सूत्र संचालन करनेवाले पिताओंके ही पुत्र और पुत्रियां हैं। हम पुनः विश्वपर अपना साम्राज्य स्थापित कर ओ३म्के परम पवित्र झंडेको विश्वमें फहरायेंगे।

विश्वके एक सौ बीस देशोंमें हम वेद प्रचारके केन्द्र स्थापित करेंगे। महर्षि दयानन्द वेद विश्व विद्यालयकी शाखायें स्थापित करेंगे। महात्मा बुद्ध और महाराजा अशोकके अनुचरोंकी भांति हम हजारों और लाखों वैदिक मिशनरी उपदेशक और उपदेशकायें तैयार करके विश्वमें वैदिक धर्मके प्रबल प्रचारके लिये हम अपना तन, मन, धन सर्वस्व लुटा देंगे। यह निश्चय करो कि हम वैदिकधर्मकी सेवाके लिये ही जियेंगे और मरेंगे।

भव्य भावना

आज हिमालयकी चोटीपर ओ३म्की पावन पताकाको लहराकर यह प्रतिज्ञा करो कि हम देश और देशान्तरोंमें द्वीप और द्वीपान्तरोंमें वैदिक अध्यात्मवादकी सलिल सरिताका प्रबल प्रवाह प्रवाहित करेंगे।

हम चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य अणु और परमाणु बमोंके आविष्कारसे नहीं अपितु विश्व कल्याणकी भव्य भावनासे वसुधैव कुटुम्बकम्की भव्य भावनासे, विश्वकी सेवासे जगत् जननी भारत माताका मुख उज्ज्वल हम करेंगे। भारतीय संस्कृतिके प्रसारसे विश्वका गुरु हम बनायेंगे पुनः भारतवर्ष देशको।

लेखनी और वाणी द्वारा ज्ञान विज्ञान, विवेक, विनम्रता, सज्जनता, मानवता, आत्मीयता, मित्रता, मृदुभाषिता, मृदु मंजुलभावकी माला बनाकर, हारोंका उपहार बनाकर परमात्मासे बल प्राप्त कर हम जगत्को जगायेंगे।

विश्वके मानव समाजको मानवीय गुणोंसे आज अलंकृत करो।

वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों एवं विश्वके धर्म ग्रंथोंका गहन मंथन करनेसे यह ज्ञान रत्न प्राप्त हुआ है कि विश्वके मानव समाजको मानवीय गुणोंसे अलंकृत करो। आज विश्वका मानव समाज प्रतिपल विनाशकी ओर अग्रसर होता जा रहा है। विश्वको विनाशसे बचानेका केवल मात्र एकही मार्ग है, वह है वेदोंका पठन पाठन मानव मात्रके लिये अनिवार्य चालू किया जाये। वेदोक्त धर्मयुक्त जीवनके निर्माणके बिना विश्वको विनाशसे बचानेका कोई साधन दृष्टिपथमें नहीं आ रहा है।

संगठन शक्ति और विश्व निर्माण

ऐ महर्षि दयानन्दके सैनिको आज आपसी कलह, वैमनस्य, एवं पद लोलुपताको त्यागकर महर्षि दयानन्दके सच्चे सैनिक बन कर वैदिक विचार धाराकी अमृत धाराको बहा दो।

वसुधाको वेद सुधाका दान प्रदान करो। जगत्का कल्याण करो। आर्य समाजको विश्वका पथ प्रदर्शक बनाओ। अपने जीवनोंमें सादगी, पवित्रता और संयम, भारतीयता, माधुर्य, सरसता, सौम्यता, सज्जनता, सेवा भावना लाओ।

सेवा धर्म

सेवा धर्म अत्यन्त गहन धर्म है। विश्वकी मानवताके संरक्षणमें सेवामें तन, मन और धनसे जुट जाओ। सेवासे यज्ञमय जीवनसे अपने आपको समृद्ध बना लो।

सेवासेही हम विश्वका निर्माण कर सकेंगे। सेवाही जीवनका अमर संगीत है। सेवासेही भगवान्का सच्चा आशीर्वाद भक्तोंको प्राप्त होता है। पर सेवा, पर उपकारके बराबर और कोई धर्म नहीं है।

अपने धर्म और कर्मको पहचानकर धर्मवीर, प्रणवीर, कर्मवीर बनो।

स्वाभिमान

स्वाभिमान, स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेश, सुविचार संस्कृतिकी रक्षाका महा व्रत धारण करो। स्वाभिमान मानव जीवनका उत्कर्ष रत्न धन है। स्वाभिमानसेही सुविचारोंका उदय हृदय आकाशमें होता है। सुविचारोंकोही प्राप्त कर मनुष्य सर्वं महान् बन पाता है।

स्वाभिमान मानव जीवनकी उन्नतिका बहुत बडा रत्नकोष है। भारत वसुन्धराकी पुण्य भूमिमें जन्म लेनेका आज हमें गौरव होना चाहिये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विद्यार्थी समाज और विश्व निर्माण

विद्यार्थी समाज अनुशासनमें रह कर माता, पिता और आचार्य वर्गका सम्मान करते हुये विश्व वैभवको प्राप्त करें। भारतवर्ष देशके ही विद्यार्थी विश्वकी आकुल मानवताकी रक्षा करेंगे। अपने जीवनोंमें भारतीयताको लाकर भव्य भावनाओंको धारण कर महापुरुष बनो।

चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यको स्थापित करो, आजके पावन प्रभातमें यह वेद भगवान्का एवं महर्षि स्वामी दयानन्दजीका पावन संदेश है।

महर्षि दयानन्द वेद विश्व विद्यालयका निर्माण और चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यकी स्थापना

महर्षि दयानन्द वेद विश्व विद्यालयके निर्माणसे ही चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य हम स्थापित कर सकेंगे।

विश्वभरके विद्यार्थी यहीं आकर भारत माताके चरणोंमें नत मस्तक होकर वेदों, शास्त्रों, उपनिषदोंका ज्ञान प्राप्त कर चक्रवर्ती साम्राज्यके सूत्र संचालनका पाठ पढ़ेंगे।

विश्वकी धरतीको स्वर्गीय सुखोंसे परिपूरित करेंगे।

क्या आप चाहते हैं ?

१ यदि आप चाहते हैं कि विश्वमें राम राज्य स्थापित हो ?

२ यदि आप चाहते हैं कि भारतीय रहन, सहन, आचार, विचार विवेकका विश्व व्यापी प्रसार हो ?

३ यदि आप चाहते हैं कि यह देश अपने अतीत गौरव गरिमाको प्राप्त करे।

४ यदि आप चाहते हैं कि विश्वभरमें गुरुकुल शिक्षा प्रणालीका प्रसार हो।

५ यदि आप चाहते हैं कि पापका अभिशाप सदाके लिये समाप्त हो जाये।

६ यदि आप चाहते हैं कि वेदमंत्रोंकी पवित्र ध्वनिसे विश्व गगन गूंज उठे।

७ यदि आप चाहते हैं कि आत्मज्ञानकी पावनगंगाका संगम प्राप्त हो।

८ यदि आप चाहते हैं कि भारतवर्ष देश पुनः विश्वका गुरु बने।

९ यदि आप चाहते हैं कि मानव धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुखोंका अधिकारी बन सके।

१० यदि आप चाहते हैं कि विश्व युद्धके काले बादल सदाके लिये समाप्त हो जायें।

११ यदि आप चाहते हैं कि विश्वबन्धुत्वकी भव्य भावनाओंसे जन मन विकसित हर्षित पाये जायें।

१२ यदि आप आत्मबल और संकल्प बलके धनि बनना चाहते हैं।

१३ यदि आप अरबों वर्षोंके शाश्वत शब्दोंको अपने हृदय आकाशमें सुनना चाहते हैं।

१४ यदि आप परम आनन्द एवं अक्षय सुखोंसे समृद्ध होना चाहते हैं।

१५ यदि आप अपने जीवनमें अनुपम अनुरागके पावन परागको लाना चाहते हैं।

१६ यदि आप भव्य भावनाओंके विपुल धनसे जगत्को समृद्ध करना चाहते हैं।

१७ यदि आप अपने मन मंदिरमेंही भगवान्के दिव्य दर्शनको करना चाहते हैं।

१८ यदि आप युगोंके इतिहासमें एक नई क्रान्तिको लाना चाहते हैं।

१९ यदि आप युग प्रवाहको मोड़ना चाहते हैं।

२० यदि आप विश्व विधाताके विधानसे परिचित होना चाहते हैं।

२१ यदि आप मृत्यु पर विजय प्राप्त कर अक्षय सुखोंको प्राप्त करना चाहते हैं।

२२ यदि आप सत्य, शिव, सुन्दरम्, अपने जीवनमें चरितार्थ करना चाहते हैं।

२३ यदि आप चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्यको स्थापित करना चाहते हैं।

२४ यदि आप मनोविज्ञान, धर्मविज्ञान, योग विज्ञान, वेदविज्ञान, कर्म विज्ञान, प्रार्थना विज्ञान, यज्ञ विज्ञान, आत्म बल विज्ञान, शब्द सागर विज्ञान, हृदय आकाश आदि महा विज्ञानोंका महाज्ञाता बनना चाहते हैं ?

२५ यदि आप अपने जीवनके माधुर्य और अनुपम सौन्दर्यसे परिचित होना चाहते हैं।

२६ यदि आप एक महा पुरुष बनना चाहते हैं।

२७ यदि आप विश्व विजय करना चाहते हैं।

२८ यदि आप पूर्व जन्मोंकी विपुल विद्याओंके रत्न कोषसे पंडित और मंडित होना चाहते हैं ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२९ यदि आप विश्वके नव निर्माणको करना चाहते हैं।

३० यदि आप पापके अभिशापको समाप्त करना चाहते हैं।

३१ यदि आप वैदिक युगका दर्शन करना चाहते हैं।

३२ यदि आप आत्म दर्शनकी दिव्य ज्योतिका प्रकाश पुंज प्राप्त करना चाहते हैं।

३३ यदि आप साधना, समाधि और मोक्ष अवस्थाका अपरिमित आनन्द इस जीवनमें प्राप्त करना चाहते हैं।

३४ यदि आप अपने आपको और परमात्माको पहचानना चाहते हैं।

३५ यदि आप कर्म रहस्य और कर्म विज्ञानके मूल सिद्धान्तोंसे परिचित होना चाहते हैं।

३६ यदि आप आवा गमनके बन्धनोंसे मुक्त होना चाहते हैं।

३७ यदि आप लोह पुरुष और महा पुरुष बनना चाहते हैं।

३८ यदि आप आपने आप पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं।

३९ यदि आप अपने मन पर विजय प्राप्त करना चाहते हैं।

४० यदि आप प्रति पल प्रमुदित और प्रसन्न, प्रफुल्लित, हिय हर्षित रहना चाहते हैं।

४१ यदि आप युग धाराको बदल कर नय युगका नव निर्माण करना चाहते हैं, तो आप आजसे ही आलस्य रुपी महा शत्रुसे बचकर आत्म चिन्तनमें लग जाइये। मनोवान्छित फलोंको पाने के लिये आपदाओंको सिर मौर बनाकर आगे बढो। यह याद रहे सफलता चरण चूमती हैं उन वीरों और प्रणवीरोंका जो आपदाओंको सिर मौर बनाकर प्रति पल अविराम आगे बढते हैं।

उठो, जागो, चिरनिद्राको त्यागो। चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य स्थापित करनेका महा व्रत धारण करके जीवन संग्राममें जीवन पथमें अविराम आगे बढो।

चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य स्थापित करना जीवनका एक महा मंत्र बनालो। संसारमें मनुष्यके लिये कोई असंभव कार्य नहीं है। मनुष्य शक्तियोंका महा पुंज है। धर्मवीर बन कर पावन पथके जगको यह बतलाओगे।

आर्यसमाजी सर्व हितैषी दुनियांको दिखलाओगे
चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य स्थापित कर
विश्वमें वैदिक ध्वजा फहराओगे।

जो बोले सो अमृत अभय
वैदिक धर्मकी जय
महर्षि दयानन्दकी जय

भव्य भावना बनी रहे हृदयमें सदा रात दिन आठो याम।
अरुण बाल रविके उगने पर दिन ढलते दो पहरी साम॥

जीवनकी सुरम्य वाटिकाके सुमन

जीवनकी सुरम्य वाटिकाके सुमन आज कह रहे थे यह बारबार कि जीवन पथकी पथ रेखाके शूलोंको फूल बनाकर प्रतिपल बढे चलो। जीवन सुमनको देखो।

वेदोंको संदेश आज जन मन तक पहुंचानेकी प्रबल प्रतिज्ञा करो। इस भूतलके ओर छोरमें जीवन सुगन्धकी रश्मियोंको प्रगटित करो।

सर फरोश बनो

सत्य धर्म वेदके प्रचार हित सरको कलम कराकर सरदार और वीर धर्मवीर बनो। यह वेदका पावन संदेश है। सर फरोशोंकी दुनियां इस दुनियांसे अलग होती है।

इस संसारमें सरफरोशही विश्वके इतिहासमें अपना नाम अमर कर पाते हैं। यह याद रहे जब तक नभमें सूर्य, चन्द्र और तारे रहेंगे तब तक उन वीरोंके नाम विश्वके इतिहासमें अमर रहेंगे इस लिये यह उद्घोष करो—

है उसीका कीर्तिकारक नाम इस संसारमें।
दे दिया सर्वस्व जिसने विश्वके उपकारमें॥

आओ वेदका पावन संदेश पाकर हम अपना पुनः चक्रवर्ती वैदिक साम्राज्य स्थापित करें।

ऐ देशके विद्यार्थियों, तुम भारतीय संस्कृतिके अमर उन्नायक रवि, शशि, तारे बनो। तुम भारत चमनके चमकते रत्न सुमनरत्न जवाहिर हीरा और मोती बनो। तुम भारत माताके सपूत बनो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : श्री वा. विष्णुदयाल

रामायणमें चर्चित महिलाएँ

रामायणके मुख्य पात्रोंमेंसे जहां दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, विभीषण प्रथम पंक्तिमें आते हैं वहां अनेक देवियांभी स्मरणीय हैं ।

इस महाकाव्यमें चर्चित महिलाएँ अति सुन्दर थीं, फिर भी इनका चरित इतना ऊंचा था कि इनके प्रति पाठकके हृदयमें भक्ति ही होती है । अब कोई अपने रूप लावण्यके कारण प्रसिद्ध हो तो फिल्म व्यवसायकी ओर उसका तत्काल ध्यान चला जाता है ।

केकयी खूब कोसी जाती है । वह रूपवती थी । युद्धमें उसने अपना कौशल दिखाया था । रामको प्यार करती थी तभी तो मन्थराका षड्यन्त्र सफल नहीं हुआ था । जब दोबारो जाल बुना गया तब केकयी फंसी ।

सीताका सुन्दर रूप रावणको खींच लाता है । उसकी बहिन शूर्पणखाने उसे उभारा, पर वह राम लक्ष्मणपर आक्रमण करनेको तैयार न हुआ । तब बहिनने कहा, दोनों राजकुमारोंके साथ एक सुन्दरी है । बस, कामोद्दीपन हुआ । राक्षस होनेसे रावणमें विकार हुआ । उसका कामी होना शोभा नहीं देता था । रामायणने उसे दुष्टोंमें पहला स्थान दिया ।

उस कामीको एक ब्रह्मचारीने दण्ड दिया । हनुमानजीने प्रथमबार एकाकी लंकाको थड थडा छोडा और द्वितीय बार पूरी तरहसे जीता । रामायणमें उसी तरह ब्रह्मचर्यकी महिमा गायी गी जिस तरह वेदोंमें गायी गी ।

शबरीकी कथा कौन भूल सकता है? वनमें ऐसी भक्तिव पडी हुई थीं, यह तब ज्ञात हुआ जब रामका वन गमन हुआ ।

महिलाएँ अपने शरीरके सौन्दर्यके साथ अपने आत्माके सौन्दर्य, शुद्धचरित्रको कायम रखती थीं ।

जहां पुरुषोंके मध्य रावण पाया जाता था जो काम वासनाका शिकार बना हुआ था वहां स्त्रियोंमें चरित्रहीन नहींके बराबर थीं । भारतने मानवोंसे ब्रह्मचर्यका पालन करनेका बार बार आग्रह किया है । यज्ञोपवीत संस्कारके अवसरपर यह मंत्र उच्चारित होता है ।

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं, यज्ञोपवितं बलमस्तु तेजः ॥

पवित्रताका बल तथा विद्या तेज साथ देता है । जो इन तीन व्रतोंको धारण करे वही ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणी है ।

रामके दलमें कोई पुरुष स्खलित हो जाता था तो राम तो दूर रहे, लक्ष्मणकी ताडना उसे सत्पथपर लानेमें समर्थ होती थी । इस विषयको स्पष्ट करनेके लिए यहां शिथिल पडे हुवे सुग्रीव और उस शिथिलता जैसे कुत्सित कर्मके फलस्वरूप उत्पन्न हुए नैराश्यकी कथा वाल्मीकि मुनिके शब्दोंमें दी जाती है :

समृद्धार्थं च सुग्रीवं मन्दधर्मार्थसंग्रहम् ।
अत्यर्थमसतां मार्गमेकान्तगतमानसम् ॥
निवृत्तकार्यं सिद्धार्थं प्रमदाभिरतं सदा ।
प्राप्तवन्तमभिप्रेतान् सर्वानपि मनोरथम् ॥
स्वां च पत्नीमभिप्रेतां तारां चापि समीप्सिताम् ।
विरहन्तमहोरात्रं कृतार्थं विगतज्वरम् ॥
क्रीडन्तमिव देवेन्द्रं नन्दनेऽप्सरसां गणैः ।
मन्त्रिषु न्यस्तकार्यं च मन्त्रिणामनवेक्षकम् ॥
उत्सन्नराज्यसंदेशं कामवृत्तमवस्थितम् ।
निश्चितार्थोऽर्थतत्वतः कालधर्मविशेषवित् ॥
प्रसाद्य वाक्यैर्मधुरैर्हेतुमद्भिर्मनोरमैः ।
वाक्यविद्वाक्यतत्त्वज्ञं हरीशं मारुतात्मजः ॥

+

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हितं तथ्यं च पथ्यं च सामधर्मार्थनीतिमत् ।
प्रणयप्रीतिसंयुक्तं विश्वासकृतनिश्चयम् ॥
हरीश्वरमुपागम्य हनुमान् वाक्यमब्रवीत् ।
राज्यं प्राप्तं यशश्चैव कौली श्रीरपति वर्धिता ॥

सुग्रीवके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये । सुख भोगमें लिप्त होनेके कारण जो धर्म-अर्थके संग्रहमें शिथिलता दिखा रहा है, विलासी, असज्जनोंके मार्गका जो अनुसरण कर रहा है, विषय भोगके हेतु जो एकान्त स्थानका प्रेमी हो गया है ॥ शत्रु समाप्तिरूपी जिसका कार्य समाप्त हो गया है, जिसे राज्यप्राप्ति हो गई है, हर समय जो स्त्रियोंमें रमण कर रहा है, जिसके सभी अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो चुके हैं ॥ जिसने अपनी पत्नी रुमा तथा आकांक्षित ताराको भी प्राप्त कर लिया है, रात दिन जो आहार विहार आदि भोगोंमें लगा हुआ है, सफल मनोरथ होनेके कारण जिसकी सारी चिन्ताएं दूर हो गई हैं ॥ इन्द्रके समान गन्धर्व और अप्सराओंके साथ जो क्रीडा कर रहा है, जिसने अपना सारा राज्यभार मन्त्रियों पर छोड दिया है, मन्त्रियोंकी देखभालका काम जिसने छोड दिया है । राजकीय नियम तथा आदेश आदि जिसके शिथिल हो गये हैं, जो पदे-पदे स्वेच्छाचारिताका परिचय दे रहा है, वाक्य तत्वके वेत्ता, इसप्रकारके वनवासियोंके सम्राट् सुग्रीवके पास जाकर वाणी कोविद्, निश्चित अर्थोंके तत्त्वको जाननेवाले, कालधर्मके विशेष वेत्ता पवन पुत्र हनुमान् साम-धर्म नीतिसे युक्त, हित, पथ्य तथा उपयोगी, नम्रता-प्रेमसे युक्त वचन बोले- आपने राज्य तथा यशको प्राप्त कर लिया तथा परम्परासे आई हुई समृद्धिको आपने बढाया, आदि ।

कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् ।
बुद्ध्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥
स तु संज्ञामुपागम्य मुहूर्तान्मतिमान् पुनः ।
मनःस्थामपि वैदेहीं चिन्तयामास राघवः ॥
दृष्ट्वा च विमलं व्योमगतविद्युद्बलाहकम् ।
सारसारावसंघुष्टं विललापार्तया गिरा ॥
आसीनः पर्वतस्याग्रे हेमधातुविभूषिते ।
शारदं गगनं दृष्ट्वा जगाम मनसा प्रियाम् ॥
सारसारावसंनादैः सारसारावनादिनो ।
याश्रमे रमते बाला साद्य मे रमते कथम् ॥
पुष्पितांश्चासनान् दृष्ट्वा काञ्चनानिव निर्मलान् ।
कथं सारमते बाला पश्यन्ती मामपश्यती ॥
या पुरा कलहंसानां स्वरेण कलभाषिणी ।
बुध्यते चारुसर्वाङ्गी साद्य मे बुध्यते कथम् ॥
निःस्वनं चक्रवाकाणां निशम्य सहचारिणाम् ।
पुण्डरीकविशालाक्षी कथमेषा भविष्यति ॥
सरांसि सरितो वापीः काननानि वनानि च ।
तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥
अपि तां मद्वियोगाच्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् ।
सुदूरं पीडयेत्कामः शरद्गुणनिरन्तरः ॥
एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः ।
विहङ्ग इव सारङ्गः सलिलं त्रिदशेश्वरात् ॥
ततश्चञ्चर्य रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु ।
ददर्श पर्युपावृत्तो लक्ष्मीवाल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥
तं चिन्तया दुःसह्या परीतं
विसंज्ञमेकं विजने मनस्वी ।
भ्रातुर्विषादात्परितापदीनः
समीक्ष्य सौमित्रिरुवाच रामम् ॥
किमार्य कामस्य वशं गतेन
किमात्मपौरुष्यपराभवेन ।
अयं ह्रिया संह्रियते समाधिः
किमत्र योगेन निवर्तते न ॥
क्रियाभियोगं मनसः प्रसादं
समाधियोगानुगतं च कालम् ।
सहायसामर्थ्यमदीनसत्त्वं
स्वकर्महेतुं च कुरुष्व तात ॥
न जानकी मानववंशनाथ
त्वया सनाथा सुलभा परेण ।
न चाग्निचूडां ज्वलितामुपेत्य
नदह्य ते वीर वराई कश्चित् ॥
स लक्षणं लक्ष्मणमप्रधृष्यं
स्वभावजं वाक्यमुवाच रामः ।
हितं च पथ्यं च नयप्रसक्तं
ससाम धर्मार्थ समाहितं च ॥

सुग्रीव अत्यन्त कामासक्त हो गया है, जानकीका कुछ पता नहीं लग रहा है, प्रतिज्ञापूर्वक सुग्रीवका दिया हुआ समय भी समाप्त हो गया है । इन सब बातोंपर विचार कर दुःखी रामचन्द्र किंकर्तव्य विमूढ हो गये । कुछ समय पश्चात् बुद्धिमान् रामचन्द्र अपनी स्वस्थावस्थामें आकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अन्तःकरणमें बैठी हुई सीताका स्मरण तथा चिन्तन करने लगे। आकाश एकदम स्वच्छ हो गया है, विद्युत्‌के साथ मेघ मण्डल समाप्त हो गया है, क्रौंच पक्षियोंके शब्द आरंभ हो गये हैं, यह देखकर रामचन्द्र अत्यन्त आर्त्त होकर विलाप करने लगे। स्वर्णमय धातुओंसे भूषित पर्वतके शिखर पर बैठे हुए शरत्कालीन गगनको देखकर रामचन्द्र मनसे सीताका स्मरण करने लगे। सारस पक्षीके समान बोलनेवाली प्राण-प्रिया सीता सारस पक्षियोंके शब्दको सुनकर मेरे साथ आश्रममें जो विनोद करती थी, वह आज कैसे क्रीडा करती होगी। निर्मल काञ्चनके समान पुष्पित आश्रम वृक्षोंको देखकर तथा मुझको अनुपस्थित देखकर वह जानकी कैसे प्रसन्न होती होगी। जो मधुरभाषिणी सीता पहले कलहंसोंके शब्दोंको सुनकर उनके आगमनको समझ जाती थी, सर्वांगसुन्दरी वह इस समय किस प्रकार सुख शान्ति पाती होगी। सरोवर, नदियां, बावडी, वाटिका तथा वन इन सब स्थानोंमें भ्रमण करते हुए भी मृगनयनी सीताके बिना आज मुझे सुख शान्ति नहीं प्राप्त हो रही है। मुझसे वियुक्त होनेके कारण तथा अत्यन्त सुकुमारी होनेसे कामोद्दीपक शरत्कालके द्वारा बढा हुआ सीताका मनोज उसे अधिक पीडित करता होगा। जैसे चातक मेघके जलके लिए कारण क्रन्दन करता है, उसी प्रकार रामचन्द्र जानकीके लिए करुणामय शब्दोंमें विलाप करने लगे। रमणीय पर्वत शिखर पर कन्द-मूल-फल आदिके लिए कष्टपूर्वक भ्रमण कर आये हुए सौम्य लक्ष्मणने अपने भाई रामचन्द्रको देखा। असहनीय चिन्तासे आक्रान्त, अत्यन्त दुःखी, संज्ञाहीन, रामचन्द्रको देखकर अपने भ्राताके दुःखसे अत्यन्त दुःखी, मनस्वी लक्ष्मण उनसे बोले। हे आर्य रामचन्द्र! इस प्रकार मानसिक दुर्बलतासे आपको क्या लाभ होगा तथा चारित्रिक एवं आत्मिक बल त्यागनेसे क्या लाभ होगा। इस शोक या दुर्बलतासे चित्तकी शान्ति तथा एकाग्रता नष्ट हो जाती है। क्या इस समय संयम तथा योगके द्वारा चित्तकी एकाग्रता तथा शान्तिको लौटाया नहीं जा सकता। हे आर्य रामचन्द्र! चित्तको प्रसन्न करते हुए अपने दैविक क्रिया कलापोंको कीजिये, समाधि योगके द्वारा बनाये हुए अनुकूल काल, सहायता, सामर्थ्य तथा अदीनत्व इन सभीको अपने कार्यकी सिद्धिमें हेतु बनाईये। हे मानव कुलभूषण श्रेष्ठ वीर रामचन्द्र! आपकी वशवर्त्तिनी जानकी दूसरेके अधीन कभी भी नहीं हो सकती, जैसे जाज्वल्यमान धधकती हुई अग्निके समीप कोई तैजस पदार्थ ही रह सकता है अन्यथा जलकर क्षार हो जाते हैं। उत्तम लक्षणोंसे युक्त, कभी भी पराजित न होनेवाले लक्ष्मणसे सामान्य वाक्योंके द्वारा रामचन्द्र बोले- हे वीर! आपने जो भी कुछ कहा है, नीतियुक्त, पथ्य, हितसे परिपूर्ण है, शान्ति, धर्म तथा अर्थसे युक्त है।'

अपनी सती साध्वी पत्नीके साथ बिताये हुए दिन रामचन्द्रजीको रह रह कर याद हुए। पति पत्नीका पक्षियों तकसे प्रेम था। जब जब पक्षी बोलते थे श्री रामचन्द्रको सुखद घडियोंका स्मरण होता था। सीताजी सुदूर देशमें पहुंच चुकी थीं पर एक पलके लिए भी उनके पतिदेव उन्हें भूलनेको तैयार न थे। ललित पदोंको पढकर कौन पाठक आनन्द विभोर नहीं होता?

सीताजीके पावन जीवनपर हमारा ध्यान खींचते हुए गोस्वामी तुलसीदासने 'मानस' में लिखा कि वे कठोर वचन बोल रही थीं, मगर लक्ष्मण क्रुद्ध न हुए समालोचक यह कहते नहीं अघाते कि रामके प्रति 'मानस' के रचयिताके हृदयमें कूट कूट कर भक्ति थी। भक्ति केवल रामचन्द्रजीके प्रति न थी, सीताजीके प्रति भी थी। मानसके पाठक श्रद्धा-पूर्वक उस प्रिय ग्रन्थका पाठ करते हैं। कलियुगमें कलिमलका यह धोनेवाला ग्रन्थ है। कविने क्या ही ठीक लिखा है—

'कलि – कल्मष की बढती लतिका
तव पुण्य-प्रभावसे झुलसी।
जनता-जन निद्रित थे जगमें
उनकी वह आँख गयी खुल-सी॥'

बापूजीका 'मानस' चिर संगी था। बापूजीके समान किसी भी व्यक्तिने कलिमल धोनेमें सहायता नहीं पहुंचायी है।

राजा सुग्रीवके पास जाते हुए वीर लक्ष्मण क्रोधसे भर गये; अग्रजका शोक मिटाते समय वे अति विनम्र थे, उनका हृदय भक्तिसे पूर्ण था।

सुग्रीवने रावणका किसी अंशमें पदानुसरण करना आरंभ किया था, अतः लक्ष्मणमें रोष उत्पन्न हुआ। जब सुग्रीवको सूचना मिली कि लक्ष्मण महलके द्वारपर पहुंच चुके वे भयत्रस्त हुए। उन्होंने अपना आसन त्यागनेको देर न की। रामायणका एक ही और श्लोक दिया जा रहा है—

'अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवः सचिवैः सह।
लक्ष्मणं कुपितं श्रुत्वा मुमोचासनमात्मवान्॥

दोनों मन्त्रियोंके साथ राजकुमार अंगदकी बातोंको सुनकर तथा लक्ष्मणके क्रोधका समाचार पाकर बुद्धिमान् सुग्रीवने आसनको छोड दिया।'

वे स्खलित होनेसे बचे, पूरी सहायता देकर उन्होंने रामको विजयी बनाया।'

पुरुष बचे रहें तो स्त्रियां भी बची रहेंगी। एक राजाने कहा था—

न मे स्तेनो जनपदे
न कदर्यो न मद्यपो
ना नाहिताग्निर्नाविद्वान्
न स्वैरी स्वैरिणी कुतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : श्री श्रीराम माधव चिंगले, एम्. ए., तत्त्वज्ञानमंदिर, अमलनेर

महावाक्यार्थ बोधको सुगमतया साकार करनेवाला

अजपाजप या अजपा गायत्री

हमारे लोककल्याणेच्छु ऋषिमुनियोंने तापत्रयसे पीडित मानवके कल्याणार्थ रुचिवैचित्र्य और अधिकार भेदसे अनेक सुगम साधन प्रकट किए हैं। इनमेंसे अजपाजप भी एक सुलभ किन्तु परमोच्च फलदायक साधन है। हमारे श्वास-प्रश्वासकी क्रिया जन्मसे लगाकर मृत्युतक चलती रहती है। इससे कौन परिचित नहीं ? किन्तु इसका समुचित महत्त्व सभी समझते हों यह बात नहीं। इस अनायास चलनेवाली क्रियाको परमार्थमार्गके सर्वोच्च फलकी प्राप्तिका साधन बनानेमें ही भारतीय मनीषियोंकी विशेषता है। बिना इन मनीषियोंके मार्गदर्शनके इस रहस्यको अज्ञानी बहिर्मुख मानव कल्पना तक नहीं कर सकता। यह अजपाजप रूप साधन इस सर्वजन परिचित श्वासोच्छ्वासकी स्वाभाविक क्रियासे ही निगडित है।

चौबीस घंटोंमें हमारी कुल मिलाकर २१६०० साँस चलती हैं। अब यदि आप ध्यान देकर देखें तो प्रत्येक भीतर आनेवाली साँसकी ध्वनि ‘ स: ’ यह रूप और प्रत्येक बाहर जानेवाली साँसकी ध्वनि ‘ हं ’ यह रूप धारण करती है। दोनों मिलकर ‘ सोऽहम् और इससे विपरीत ‘ हंसः ’ इस प्रकारका ‘ अहं ब्रह्मास्मि ’ माने मैं ही नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द परात्पर परब्रह्म हूँ ’ इस अर्थका द्योतक श्रुति प्रतिपादित महावाक्यरूप मंत्र बन जाता है। ‘ हंस ’ शब्द श्रुतियोंमें जीवात्मा और परमात्मा दोनोंका वाचक है। जागृतादि विभिन्न अवस्थाओंमें और संसार मार्गमें हनन माने संचार और गमन करनेके कारण जीवको ‘ हंस ’ कहा गया है। अपने साक्षात्कारके साथ ही समस्त अविद्यामूलक बंधोंका समूल नाश करनेके कारण परब्रह्मको भी ‘ हंस ’ कहा गया है। श्रुतिको दोनोंकी तात्त्विक एकता अभिप्रेत है। यह एकता प्रत्येक श्वासप्रश्वासमें प्रकट होती रहती है। प्रत्येक ‘ हं ’ स्वरूप बाहर जानेवाली साँसके साथ अहंसंज्ञक परिच्छिन्न जीव मानो अपने देहादि उपाधिकृत बंधनोंसे मुक्त होकर वासुदेव स्वरूप विराट बाह्य जगतमें प्रवेश करके विश्वात्माके साथ तादात्म्यापन्न होता है। इसी प्रकार वह परमात्मस्वरूपके वाचक ‘ सः ’ संज्ञक प्रत्येक भीतर आनेवाली साँसके साथ पुनश्च अंदर आता है। किन्तु ऐसा करते समय वह वासुदेव संज्ञक विश्वात्माको साथ लेकर ही भीतर प्रवेश करता है और इस प्रकार अपने अंत:करणको शिवभावसे ओतप्रोत करता रहता है।

उक्त रीतिसे जागृतादि सभी अवस्थाओंमें प्रत्येक श्वासोच्छ्वासके साथ यह जीव शिवकी एकता संपादन करनेवाला अजपाजप चलता रहता है और वह जीवका शिवके साथ, अंतर्जगत्का बहिर्जगत्के साथ, अंशरूप जीवका अंशी परमात्माके साथ निरन्तर ऐक्यभाव प्रस्थापित करता रहता है। आवश्यकता है केवल इस रहस्यसे परिचित होकर जागरूकतया इस ब्रह्मात्म बोधपर आरूढ होनेकी। इस ब्रह्मात्म बोधके दृढ होते ही चिदचिद्ग्रंथिका भेद हो जाता है; हृदयगत समस्त अज्ञानकालीन संशयोंकी निवृत्ति हो जाती है; समस्तकर्म क्षीण हो जाते हैं और इस प्रकार साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

ध्यान रहे, काण्डत्रयात्मक वेदका एकमेव अंतिमतात्पर्य जीवको उसके वास्तविक सच्चिदानन्द स्वरूप पर आरूढ कराना ही है। इसीलिए शास्त्रकारोंने श्रुतिके जीवब्रह्मैक्य प्रतिपादक वाक्यको महावाक्य कहा है और शेष ब्रह्मप्रतिपादक वाक्योंको अवान्तर वाक्य। श्रुत्युपदिष्ट सभी साधनोंका अंतिम पर्यवसान इसी ब्रह्मात्मबोधमें है। यह दुर्लभ और अनेक जन्मोंमें संसिद्ध होने वाला बोध इस अजपाजपरूप साधनके अभ्याससे सुगमतया हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आवश्यकता है इसके रहस्यको गुरुमुखसे भली भांति समझकर उसपर निरंतर ध्यान रखनेकी। शुद्ध तथा एकाग्र अंतःकरणवाले साधकको इससे अपना अभीष्ट पद शीघ्रही प्राप्त हो जाता है। किन्तु मलिन तथा असमाहित चित्त वाले साधकको इसके अभ्याससे क्रमशः चित्तशुद्धि तथा चित्तैकाग्र्य प्राप्त होकर यह बोध प्रकट होता है।

इस साधनाभ्यासका प्रारंभ करते ही इसका दृष्टफल यह होता है कि मनुष्यका स्वभावतः ही बहिर्मुख तथा चंचल मन अंतर्मुख और एकाग्र होने लगता है। प्रथमतः तो मन बडी कठिनाईसे इस अजपाजप रूप साधनमें टिक पाता है। किन्तु एक बार इसके अमृत रसास्वादका चसका लग जाने पर वह इससे हटाए भी नहीं हटता। इसके फलस्वरूप साधकका अनायास ही मनोजय हो जाता है। मनोजय बहुत बडी चीज है। मनही तो संसारवृक्षका मूल है; मन ही तो बंध मोक्षका कारण है। जिसने मनको जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया। इस विषयमें निम्न शास्त्रवचन प्रमाण हैं—

(१) अस्य संसारवृक्षस्य मनोमूलमिति स्थितम् ॥
(२) चित्तमेव हि संसारः तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
(३) मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।
(४) जितं जगत् केन, मनो हि येन।

इस अजपाजपरूप साधनकी अपनी कुछ विशेषताएं हैं। एकतो यह साधन साधकको प्रारंभसे ही सीधे अपने साध्य पर लेजाकर बठाल देता है; उसे इधर उधर कहीं भटकने नहीं देता। इसका अर्थ यह होता है कि साध्यसे एकात्मरूपही यह साधन है। साध्य और साधनमें यहां भेद नहीं है।

दूसरे यह निसर्गसिद्ध होनेसे और साथ ही बाह्योपाधि या बाह्यसाधन निरपेक्ष होनेसे सबको सब अवस्थाओंमें और सब परिस्थितियोंमें सहजसाध्य है। साधक अपने जीवन व्यवसायको संभालते हुए भी इसका अनुसंधान रख सकता है। इसका इष्ट परिणाम यह होता है कि साधकको व्यवहारकालीन विविध कर्म करते हुए भी 'अकर्तात्मयोग' प्राप्त हो जाता है। वह बाह्यतः समस्त कर्म करते हुए भी पानीमेंके कमलपत्रकी तरह अस्पृष्ट रहता है। अपने तात्त्विक स्वरूपभूत शिवस्वरूप या ब्रह्मात्मभावके जागृत रहनेके फलस्वरूप उसे अहंकर्तृत्वाभिमान और फलासक्ति स्पर्श नहीं कर पाते। ध्यान रहे, स्वयं कर्म बंधनकारक न होकर अहंकर्तृत्वाभिमान और फलासक्ति ही बंधप्रद होती है। अजपाजपके दिव्य और भूरिफलप्रद साधनसे इन दोनों बातोंका मूलोच्छेदही हो जाता है। साधकके जीवनमें इसके प्रभावसे श्रीमद्भगवद्गीतोक्त निष्कामकर्मयोग सुप्रतिष्ठित हो जाता है।

इस साधनको हम 'सहजसमाधियोग' कह सकते हैं, क्योंकि यह योगियोंकी कष्टसाध्य समाधिकी अपेक्षा अधिक सुलभ, अधिक फलदायक और व्यवहारकालमें भी न टूटनेवाली ज्ञानरूप समाधि है। इसमें समाधि व्युत्थानका भेद नहीं है। इस साधनाभ्यासकी परिपक्वदशामें तो सर्वात्मभाव या व्यापक ब्रह्मात्मभावका अनुभव होकर चराचर जगत् ब्रह्ममय या आत्ममय दीखने लगता है। आत्मतत्त्व या परमात्मतत्त्वसे पृथक्तया जगत्का अनुभव ही नहीं आता। साधकके सभी व्यवहार इसी उदात्त अद्वैतात्मभूमिसे होने लगते हैं। इस दशामें साधक स्वयं जीवसे शिव, नरसे नारायण हो जाता है। अद्वैतात्मबोधका यह परमोत्कर्ष है।

यही कारण है कि इस अजपाजप साधनकी महिमा हमारे यहांके अध्यात्मसाहित्यमें अनेक तरहसे गाई गई है। इसे अजपागायत्री भी कहा गया है। गायत्रीका अर्थ है अपना गान करनेवालेकी माताके समान रक्षण करनेवाली। सचमुच ही समूल अविद्यानिवृत्ति द्वारा सभी अनर्थोंकी आत्यंतिक निवृत्तिपूर्वक परमानन्दकी प्राप्ति करानेवाला इससे बढकर रक्षक दूसरा साधन नहीं। राजराजेश्वर योग और राजराजेश्वरी विद्या इसके दूसरे नाम हैं। पद्मपुराणमें इसे राजेश्वरीविद्या कहा गया है और इसकी अगाध महिमाका वर्णन किया गया है। इसी पुराणमें कहा गया है कि भगवान् श्री शंकरने लोकोपकारार्थ पार्वतीजीको इसका उपदेश किया था और भगवान् श्रीकृष्णजीने उद्धव तथा अर्जुनको यह बोध प्रदान किया था।

आदिनाथ श्री शंकरभगवान् द्वारा प्रवर्तित नाथ योगमें इस साधनका पूरा पूरा महत्त्व स्वीकार किया गया है। इस पंथके सर्वश्रेष्ठ आचार्य श्री गोरखनाथजी कहते हैं—

अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
तस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैर्विमुच्यते ॥

अनया सदृशी विद्या त्वनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक : श्री श्रीराम माधव चिंगले, एम्. ए., तत्त्वज्ञानमंदिर, अमलनेर

महावाक्यार्थ बोधको सुगमतया साकार करनेवाला

अजपाजप या अजपा गायत्री

हमारे लोककल्याणेच्छु ऋषिमुनियोंने तापत्रयसे पीडित मानवके कल्याणार्थ रुचिवैचित्र्य और अधिकार भेदसे अनेक सुगम साधन प्रकट किए हैं। इनमेंसे अजपाजप भी एक सुलभ किन्तु परमोच्च फलदायक साधन है। हमारे श्वास-प्रश्वासकी क्रिया जन्मसे लगाकर मृत्युतक चलती रहती है। इससे कौन परिचित नहीं? किन्तु इसका समुचित महत्त्व सभी समझते हों यह बात नहीं। इस अनायास चलनेवाली क्रियाको परमार्थमार्गके सर्वोच्च फलकी प्राप्तिका साधन बनानेमें ही भारतीय मनीषियोंकी विशेषता है। बिना इन मनीषियोंके मार्गदर्शनके इस रहस्यको अज्ञानी बहिर्मुख मानव कल्पना तक नहीं कर सकता। यह अजपाजप रूप साधन इस सर्वजन परिचित श्वासोच्छ्वासकी स्वाभाविक क्रियासे ही निगडित है।

चौबीस घंटोंमें हमारी कुल मिलाकर २१६०० सांस चलती हैं। अब यदि आप ध्यान देकर देखें तो प्रत्येक भीतर आनेवाली सांसकी ध्वनि 'सः' यह रूप और प्रत्येक बाहर जानेवाली सांसकी ध्वनि 'हं' यह रूप धारण करती है। दोनों मिलकर 'सोऽहम्' और इससे विपरीत 'हंसः' इस प्रकारका 'अहं ब्रह्मास्मि' माने मैं ही नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द परात्पर परब्रह्म हूँ' इस अर्थका द्योतक श्रुति प्रतिपादित महावाक्यरूप मंत्र बन जाता है। 'हंस' शब्द श्रुतियोंमें जीवात्मा और परमात्मा दोनोंका वाचक है। जागृतादि विभिन्न अवस्थाओंमें और संसार मार्गमें हनन माने संचार और गमन करनेके कारण जीवको 'हंस' कहा गया है। अपने साक्षात्कारके साथ ही समस्त अविद्यामूलक बंधोंका समूल नाश करनेके कारण परब्रह्मको भी 'हंस' कहा गया है। श्रुतिको दोनोंकी तात्त्विक एकता अभिप्रेत है। यह एकता प्रत्येक श्वासप्रश्वासमें प्रकट होती रहती है। प्रत्येक 'हं' स्वरूप बाहर जानेवाली सांसके साथ अहंसंज्ञक परिच्छिन्न जीव मानो अपने देहादि उपाधिकृत बंधनोंसे मुक्त होकर वासुदेव स्वरूप विराट बाह्य जगतमें प्रवेश करके विश्वात्माके साथ तादात्म्यापन्न होता है। इसी प्रकार वह परमात्मस्वरूपके वाचक 'सः' संज्ञक प्रत्येक भीतर आनेवाली सांसके साथ पुनश्च अंदर जाता है। किन्तु ऐसा करते समय वह वासुदेव संज्ञक विश्वात्माको साथ लेकर ही भीतर प्रवेश करता है और इस प्रकार अपने अंतःकरणको शिवभावसे ओतप्रोत करता रहता है।

उक्त रीतिसे जागृतादि सभी अवस्थाओंमें प्रत्येक श्वासोच्छ्वासके साथ यह जीव शिवकी एकता संपादन करनेवाला अजपाजप चलता रहता है और वह जीवका शिवके साथ, अंतर्जगत्का बहिर्जगत्के साथ, अंशरूप जीवका अंशी परमात्माके साथ निरन्तर ऐक्यभाव प्रस्थापित करता रहता है। आवश्यकता है केवल इस रहस्यसे परिचित होकर जागरूकतया इस ब्रह्मात्म बोधपर आरूढ होनेकी। इस ब्रह्मात्म बोधके दृढ होते ही चिदचिद्ग्रंथिका भेद हो जाता है; हृदयगत समस्त अज्ञानकालीन संशयोंकी निवृत्ति हो जाती है; समस्तकर्म क्षीण हो जाते हैं और इस प्रकार साधक जीवन्मुक्त हो जाता है।

ध्यान रहे, काण्डत्रयात्मक वेदका एकमेव अंतिमतात्पर्य जीवको उसके वास्तविक सच्चिदानन्द स्वरूप पर आरूढ कराना ही है। इसीलिए शास्त्रकारोंने श्रुतिके जीवब्रह्मैक्य प्रतिपादक वाक्यको महावाक्य कहा है और शेष ब्रह्मप्रतिपादक वाक्योंको अवान्तर वाक्य। श्रुत्युपदिष्ट सभी साधनोंका अंतिम पर्यवसान इसी ब्रह्मात्मबोधमें है। यह दुर्लभ और अनेक जन्मोंमें संसिद्ध होने वाला बोध इस अजपाजपरूप साधनके अभ्याससे सुगमतया हो जाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आवश्यकता है. इसके रहस्यको गुरुमुखसे भली भांति समझकर उसपर निरंतर ध्यान रखनेकी। शुद्ध तथा एकाग्र अंतःकरणवाले साधकको इससे अपना अभीष्ट पद शीघ्रही प्राप्त हो जाता है। किन्तु मलिन तथा असमाहित चित्त वाले साधकको इसके अभ्याससे क्रमशः चित्तशुद्धि तथा चित्तैकाग्र्य प्राप्त होकर यह बोध प्रकट होता है।

इस साधनाभ्यासका प्रारंभ करते ही इसका दृष्टफल यह होता है कि मनुष्यका स्वभावतः ही बहिर्मुख तथा चंचल मन अंतर्मुख और एकाग्र होने लगता है। प्रथमतः तो मन बडी कठिनाईसे इस अजपाजप रूप साधनमें टिक पाता है। किन्तु एक बार इसके अमृत रसास्वादका चसका लग जाने पर वह इससे हटाए भी नहीं हटता। इसके फलस्वरूप साधकका अनायास ही मनोजय हो जाता है। मनोजय बहुत बडी चीज है। मनही तो संसारवृक्षका मूल है; मन हो तो बंध मोक्षका कारण है। जिसने मनको जीत लिया उसने सब कुछ जीत लिया। इस विषयमें निम्न शास्त्रवचन प्रमाण हैं—

(१) अस्य संसारवृक्षस्य मनोमूलमिति स्थितम् ॥
(२) चित्तमेव हि संसारः तत्प्रयत्नेन रोधयेत्।
(३) मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।
(४) जितं जगत् केन, मनो हि येन।

इस अजपाजपरूप साधनकी अपनी कुछ विशेषताएं हैं। एकतो यह साधन साधकको प्रारंभसे ही सीधे अपने साध्य पर लेजाकर बठाल देता है; उसे इधर उधर कहीं भटकने नहीं देता। इसका अर्थ यह होता है कि साध्यसे एकात्मरूपही यह साधन है। साध्य और साधनमें यहां भेद नहीं है।

दूसरे यह निसर्गसिद्ध होनेसे और साथ ही बाह्योपाधि या बाह्यसाधन निरपेक्ष होनेसे सबको सब अवस्थाओंमें और सब परिस्थितियोंमें सहजसाध्य है। साधक अपने जीवन व्यवसायको संभालते हुए भी इसका अनुसंधान रख सकता है। इसका इष्ट परिणाम यह होता है कि साधकको व्यवहारकालीन विविध कर्म करते हुए भी 'अकर्तात्मयोग' प्राप्त हो जाता है। वह बाह्यतः समस्त कर्म करते हुए भी पानीमेंके कमलपत्रकी तरह अस्पृष्ट रहता है। अपने तात्त्विक स्वरूपभूत शिवस्वरूप या ब्रह्मात्मभावके जागृत रहनेके फलस्वरूप उसे अहंकर्तृत्वाभिमान और फलासक्ति स्पर्श नहीं कर पाते। ध्यान रहे, स्वयं कर्म बंधनकारक न होकर अहंकर्तृत्वाभिमान और फलासक्ति ही बंधप्रद होती है। अजपाजपके दिव्य और भूरिफलप्रद साधनसे इन दोनों बातोंका मूलोच्छेदही हो जाता है। साधकके जीवनमें इसके प्रभावसे श्रीमद्भगवद्गीतोक्त निष्कामकर्मयोग सुप्रतिष्ठित हो जाता है।

इस साधनको हम 'सहजसमाधियोग' कह सकते हैं, क्योंकि यह योगियोंकी कष्टसाध्य समाधिकी अपेक्षा अधिक सुलभ, अधिक फलदायक और व्यवहारकालमें भी न टूटनेवाली ज्ञानरूप समाधि है। इसमें समाधि व्युत्थानका भेद नहीं है। इस साधनाभ्यासकी परिपक्वदशामें तो सर्वात्मभाव या व्यापक ब्रह्मात्मभावका अनुभव होकर चराचर जगत् ब्रह्ममय या आत्ममय दीखने लगता है। आत्मतत्त्व या परमात्मतत्त्वसे पृथक्तया जगत्का अनुभव ही नहीं आता। साधकके सभी व्यवहार इसी उदात्त अद्वैतात्मभूमिसे होने लगते हैं। इस दशामें साधक स्वयं जीवसे शिव, नरसे नारायण हो जाता है। अद्वैतात्मबोधका यह परमोत्कर्ष है।

यही कारण है कि इस अजपाजप साधनकी महिमा हमारे यहांके अध्यात्मसाहित्यमें अनेक तरहसे गाई गई है। इसे अजपागायत्री भी कहा गया है। गायत्रीका अर्थ है अपना गान करनेवालेकी माताके समान रक्षण करनेवाली। सचमुच ही समूल अविद्यानिवृत्ति द्वारा सभी अनर्थोंकी आत्यंतिक निवृत्तिपूर्वक परमानन्दकी प्राप्ति करानेवाला इससे बढकर रक्षक दूसरा साधन नहीं। राजराजेश्वर योग और राजराजेश्वरी विद्या इसके दूसरे नाम हैं। पद्मपुराणमें इसे राजेश्वरीविद्या कहा गया है और इसकी अगाध महिमाका वर्णन किया गया है। इसी पुराणमें कहा गया है कि भगवान् श्री शंकरने लोकोपकारार्थ पार्वतीजीको इसका उपदेश किया था और भगवान् श्रीकृष्णजीने उद्धव तथा अर्जुनको यह बोध प्रदान किया था।

आदिनाथ श्री शंकरभगवान् द्वारा प्रवर्तित नाथ योगमें इस साधनका पूरा पूरा महत्त्व स्वीकार किया गया है। इस पंथके सर्वश्रेष्ठ आचार्य श्री गोरखनाथजी कहते हैं—

अजपानाम गायत्री योगिनां मोक्षदायिनी।
तस्याः संकल्पमात्रेण नरः पापैर्विमुच्यते ॥

अनया सदृशी विद्या त्वनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं ज्ञानं न भूतं न भविष्यति ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

माने यह अजपागायत्री योगियोंको मोक्ष देनेवाली है। इसके संकल्पमात्रसे योगी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसके बराबर न तो दूसरी विद्या, न तो दूसरा जप और न दूसरा ज्ञान आजतक कभी था और न आगेही होगा।

उपर्युक्त श्लोकद्वयमेंसे प्रथम श्लोकमें इसके संकल्प मात्रसे समस्त पापोंसे मुक्त होनेकी बात कही गई है। इसका समर्थन भगवत्पूज्यपाद श्रीमत् शंकराचार्यजी द्वारा रचित 'अजपाजपविधि' संज्ञक स्तोत्रमें हम किया हुआ पाते हैं। यह अजपाजप तो अनायास चलताही रहता है। किन्तु प्रातः उठते ही यदि हम हेतुपुरस्सर यह संकल्प करलें कि आज मैं २१६०० संख्याक अजपाजप करूँगा तो इस जपका पुण्य केवल संकल्पमात्रसे हमारे पल्ले पड जाता है। प्रस्तुत संदर्भमें 'जपतो नास्ति पातकम्' माने जप करनेवाला पापसे मुक्त रहता है यह शास्त्रवचन ध्यान देने योग्य है। विशेषता तो यह है कि जपके प्रभावसे साधकके अंतःकरणकी पापप्रवृत्तियांही समूल नष्ट हो जाती हैं। कितना बडा लाभ है यह।

अजपाजपके साधकको चाहिये कि सवेरे उठते बराबर पूर्व दिनका २१६०० संख्याक जप हृदयस्थ परमात्माको अर्पण कर दे। फिर उदीयमान दिनके लिए उक्तसंख्याक जपका संकल्प करे। तदनंतर पच्चीसवार 'हंसः सोऽहम्' का जप करे। फिर परमात्मासे प्रार्थना करे कि हे नाथ! मैं अब आपकी आज्ञासे और आपकाही कृपाप्रसाद प्राप्त करनेके हेतु अपने प्रतिदिनके कर्तव्यपालनमें तत्पर होता हूँ। आप मेरे हृदयमें तो स्थित हैं ही और आप सर्वसाक्षी भी हैं। आप मुझे सद्बुद्धि प्रदान करनेकी कृपा करें। किसी तरहकी दुर्बुद्धि आप मेरे मनमें उत्पन्न न होने दें।' तदनंतर विष्णुपत्नी पृथ्वीमाताको नमस्कार करके भूमिपर पैर रखे। फिर प्राप्त कर्तव्य रूप समस्त व्यवहार श्री भगवान्के साक्षी भावको ध्यानमें रखकर भगवदर्पण बुद्धिसे तथा निष्काम भावसे करे। व्यवहार करते समय भी श्वासप्रश्वासगत अजपाजपका यथासंभव अनुसंधान रखे। इस प्रकारके प्रतिदिनके साधनाभ्याससे हम संसारमें रहते हुए भी संसारबंधसे मुक्त होकर परमपुरुषार्थ मोक्षकी प्राप्ति करके अपने जीवनको कृतकृत्य बना सकते हैं।

विभिन्न भारतीय लोकभाषाओंका संतसाहित्य इस साधनके निरूपणसे भरा पडा है। स्थलसंकोच वश इसका अधिक विवरण नहीं किया जा सकता। अतएव स्थाली-पुलाक न्यायसे उपसंहारके रूपमें हम श्री कबीरसाहबके निम्न दोहे उद्धृत करते हैं:—

कबिरा माला काठकी बहुत जतनका फेर।
माला साँस उसाँसकी जामें गाँठ न मेर॥
स्वाँसाकी कर सुमरिनी अजपाका कर जाप।
परम तत्त्वको ध्यान धर सोऽहं आपे आप॥

॥ इति शुभम्॥

पूज्य पं. सातवलेकरजीको चतुर्थ पुण्यतिथि निमित्त श्रद्धांजलि

स्वाध्याय मण्डल पारडी (गुजरात) के वेदमंदिर-सभागृहमें इस वर्ष ३१ जुलाईको स्व. पंडित श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीकी चौथी पुण्यतिथि मनायी गयी। असंख्य लोग उपस्थित रहे। वेदपाठ और वैदिक स्तुति होनेके बाद इस प्रसंगके अध्यक्ष श्री स्वामी दत्तयोगेश्वरदेव तीर्थ महाराजने अपने भाषणमें कहा कि पंडित सातवलेकरजीने भारतमें संस्कृतभाषा एवं वैदिक संस्कृतिका अच्छा प्रचार किया। वे वयमें १०१ वर्षके थे फिरभी वेदोंके प्रचारकार्यमें अपने अंतिमक्षण पर्यंत युवान–से थे। उन्होंने लोगोंमें सदाचार, कर्तव्यपरायणता तथा विश्व बंधुत्वकी भावनाका अच्छा प्रचार किया है और इस प्रकारके साहित्यका भी प्रकाशन किया है। हमारे महान् देशमें ऐसे महापुरुष समय समयपर जन्मते रहे ऐसी प्रभुसे कामना करते हुए पूज्य स्वामीजीने वैदिक शांतिमंत्र पाठ किया।

स्वाध्याय मंडलके मंत्री श्री वसंत श्रीपाद सातवलेकर ने पंडितजीके शुभकार्योंको गतिशील रखनेका विचार प्रकट करते हुए उपस्थित लोगोंको धन्यवाद दिया।

वेदमंदिरमें प्रतिदिन पू. स्वामीजीका 'वैदिक धर्म एवं भारतीय संस्कृति' विषयक प्रवचन शुरु है। श्रोताजनोंकी संख्या प्रतिदिन बढती जाती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४१) एकहस्तभुजासन ।

दाहिना पांव दांये कंधेपर अथवा बायां पांव बांये कंधे-पर रखिये और दोनों हाथ गलेके पीछे परस्पर अंगुलियां मिलाकर रखिये और बाहुके सहारेसे पांवको ऊपर ही पकड रखिये। इसको " एकहस्तभुजासन " बोलते हैं।

(४२) द्विहस्तभुजासन ।

पूर्वोक्त प्रकार दोनों पांवोंको दोनों बाहुओंपर रखना और पूर्वोक्त रीतिसे हाथों द्वारा उनको ऊपरही धरदेना इस आसनमें होता है। पूर्व आसन अच्छी प्रकार होने लगेगा तो यह बननेमें देर नहीं लगती। तबतक इसका यत्न भी करना नहीं चाहिये।

ये दोनों आसन स्त्रियोंको करने नहीं चाहिये।

(४३) एकपादशिरासन ।

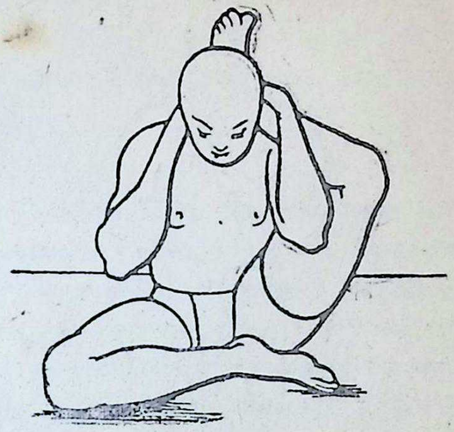

प्रथम चौकी लगाकर बैठिये। पश्चात् एक पांवको खोलकर उसके पंजेको दोनों अथवा एक हाथसे पकडकर शनैः शनैः मंद वेगसे सिरके पीछे गलेके पृष्ठ भागपर चढाइये। इससे पांव और जंघा आदि स्थानकी नसनाडीकी निर्मलता होती है।

परंतु यह आसन पहिले दिन होना कठिन है। इसलिये बलसे जबरदस्ती करना उचित नहीं। क्रमपूर्वक पांव ऊपर चढते चढते एक मासमें होने लगेगा। शीघ्रता करना अयोग्य है। यह आसन स्त्रियोंको करना नहीं चाहिये।

(४४) द्विपाद शिरासन ।

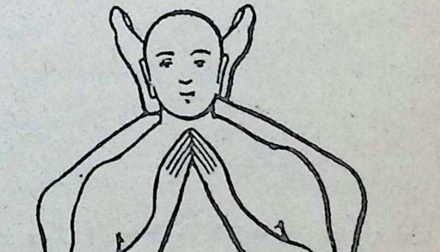

पूर्वोक्त प्रकार दोनों पांवोंको गलेके पृष्ठ भागपर एक समय रखनेसे यह आसन बनता है।

ये दोनों आसन स्त्रियोंको करने नहीं चाहिये। इसका फल पूर्वोक्त प्रकार ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(४५) वातायनासन ।

खडे रहकर एक पांवकी एडी दूसरे पांवकी जंघाके मूलमें लगाइये । किंचित् समय इस प्रकार एक पांवपरही खडा रहकर, पश्चात् शनैः शनैः इस मोडे हुए पांवका घुटना दूसरे पांवकी एडीके साथ जमीनको लगाकर खडा रहिये । यह "वातायनासन" होता है । फिर उठनेके समय शनैः शनैः उठना चाहिये । पांवोंके हेरफेरसे इसके दो भेद होते हैं । इससे भी पांवकी शक्ति बढ जाती है । अपनी शक्तिके अनुकूल इस आसनपर न्यून वा अधिक समय खडा रहनेसे उचित लाभ होता है ।

यह आसन स्त्रियां न करें ।

(४६) मत्स्येंद्रासन ।

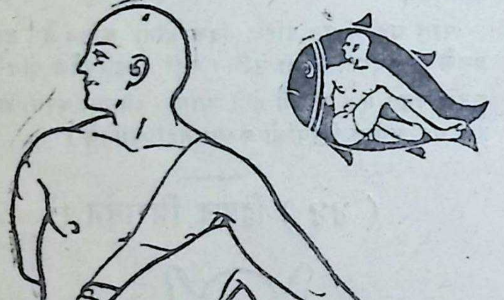

हाथ और पांवोंके हेरफेरसे यह आसन दोनों ओर करना चाहिये । यह आसन प्रारंभमें करना कठिन होता है, इसलिये प्रथमतः "मत्स्येंद्रासन" करना और जब इसका अच्छा अभ्यास हो जाय तो पश्चात् मत्स्येंद्रासनका यत्न करना उत्तम है ।

बायें पांवकी एडी गुदा और अंडकोशके बीचमें लगानी और दायां पांव पूर्ववत् बायें घुटनेके पास पंजा भूमिपर लगाके रखना । फिर बायां हाथ दांये घुटनेके बाहरसे चित्त डालकर उसकी चुटकीमें दांये पांवका अंगूठा पकडके, उस दांये पंजेको बांये घुटनेके बाहर सटाके रखना । फिर दाहिना हाथ पीठकी ओरसे फिराके उससे दांई जंघा पकडनी और अपना मुख तथा अंग पूर्ववत् घुमाके नासाग्रदृष्टि करनी । इसको अर्ध मत्स्येंद्रासन कहते हैं । पूर्ण मत्स्येंद्रासनसे यह सुगम है । और जिनका शरीर स्थूल होता है वे भी इसको थोडे प्रयत्नसे कर सकते हैं ।

इससे भी सुगम और एक तीसरा प्रकार है । उसमें भेद इतना ही है कि जो हाथ पीठकी ओर घुमानेका होता है वह अपनी सुलभताके अनुसार भूमिपर ही रखना और जहांतक हो सके वहांतक छाती और मुख पीठकी ओर घुमाना । इसको "पाद मत्स्येंद्रासन" कहते हैं ।

बाएं पांवका पंजा दाहिने पांवके मूलमें ऐसा रखना कि उसकी एडी तुंदीमें लगे और अंगुलियें पाळथीके बाहर न हों । फिर दायां पांव बाएं घुटनेके पास पंजा भूमिपर लगाके रखना । फिर बायां हाथ दायें घुटनेके बाहरसे चित्त डालके उसकी चुटकीमें दायें पांवका अंगूठा पकडके, उस दायें पांवके पंजेको बाये घुटनेसे बाहर सटाके रखना । फिर दाहिना हाथ पीठकी ओरसे फिराके उससे बायें पांवकी एडी पकड रखनी और अपना मुख तथा अंग पीठकी ओर फेरके नासाग्रमें दृष्टि करनी । इसको "मत्स्येंद्रासन" कहते हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जितनी अधिक सुगमता होती है, उतना लाभ भी कम होता है। इसलिये सुगम प्रकार थोडा अभ्यास होनेतक करके पश्चात् पूर्ण मत्स्येंद्रासनके लिये ही यत्न करना चाहिये।

इस एक आसनसे ही पीठ, पेटके नल, पांव, गला, बाहु, कमर, नाभिके निचला भाग और छातीके स्नायुओंका अच्छा खिंचाव होता है। इसलिये इतने भागोंमें इसके अभ्याससे सुपरिणाम होता है। मत्स्येंद्रासनसे जठराग्नि बढता है, पेटके अनेक रोगोंका समूल नाश होता है, पेटका दर्द, आमवात, परिणामशूल, आंतोंके रोग आदिका नाश इससे होता है। इसलिये स्वास्थ्यके इच्छुक लोगोंको इसका उत्तम अभ्यास करना चाहिये।

(४७) वृश्चिकासन।

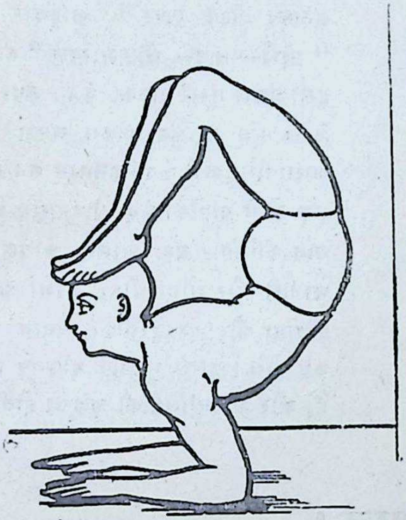

कोहनीसे पंजेतकका हाथोंका भाग भूमिपर रखकर, उसके सहारे सब शरीरको संभालकर, दिवारके सहारे पांव ऊपर ले जाइये। पश्चात् पांवोंको घुटनोंमें मोडकर सिरके ऊपर ले जाइये। इसको वृश्चिकासन कहते हैं। इससे हाथों और बाहुओंमें बल बढता है और पेट तथा आंतोंका भाग निर्दोष बनता है, तथा शरीर फुर्तीला और हलका होनेके कारण इससे सब शरीरको बडा लाभ पहुंचता है। जितना समय इस आसनमें आसानीसे रहा जा सकेगा, उतना ही रहना उचित है, उससे अधिक नहीं।

कई लोग केवल पंजोंके ऊपर ही सब शरीर संभालकर यह आसन करते हैं। यह दूसरा प्रकार है। किसी प्रकार करना हो तो प्रारंभमें दिवारका सहारा तथा मित्रोंकी सहायता लेना योग्य है। जब शरीर पूर्ण स्वाधीन हो जाय, तब स्वयं अकेला ही करनेमें कोई हानि नहीं है।

(४८) त्रिकोणासन।

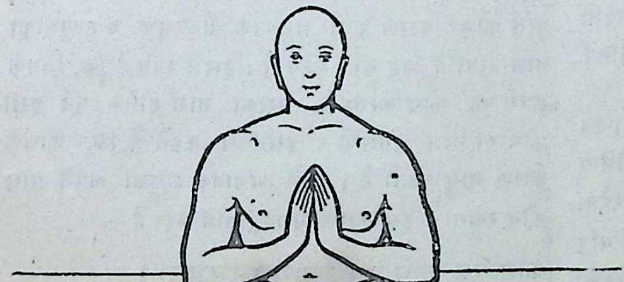

वज्रासनमें लिखी रीतिके अनुसार चूतर भूमिपर रखकर, दोनों पांव दोनों चूतरोंके दोनों ओर रखकर बैठ जाइये। पश्चात् एक पांवको घुटनेकी समरेखामें ले आइये। पश्चात् दूसरा भी पांव वैसा ही उसकी विरुद्ध दिशामें घुटनेकी समरेखामें ले जाइये। ऐसा होनेसे "त्रिकोणासन" बनता है। इससे घुटनेके दोष दूर होते हैं। घुटनोंका दर्द, संधिवात आदि बीमारी इस आसनके अभ्यासीको नहीं होगी। और यदि हुई तो इसके अभ्याससे दूर हो जाती हैं।

×

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह आसन बहुत कठिन है। इसलिये प्रारंभमें "अर्धत्रिकोणासन" का अभ्यास करना उचित है। एक पांवका ही आसन बनानेका नाम अर्धत्रिकोणासन है। जब यह सिद्ध होगा तब, दोनों पांवोंका आसन करनेका यत्न करना योग्य है। बलके साथ जबरदस्ती करनेसे हानि होगी।

(४९) कंदपीडनासन।

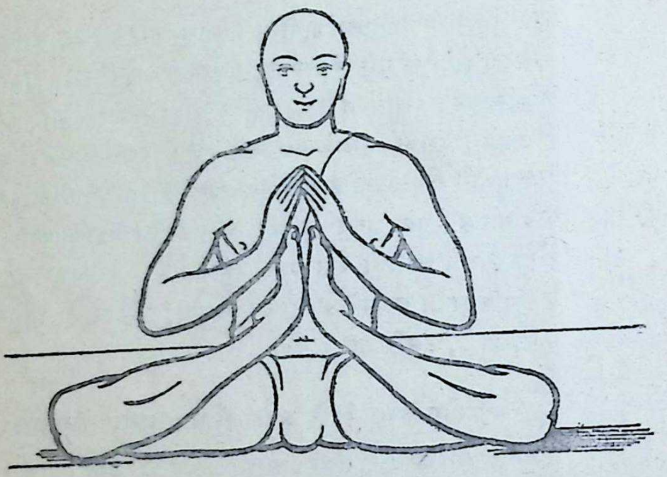

चौकी खोलकर जमीनपर बैठ जाइये। पश्चात् एक पांवका पंजा दोनों हाथोंके सहारेसे शनैः शनैः घुमाकर और ऊपर उठाकर पेटके ऊपर ले जाइये। इसको "अर्ध—कंद—पीडनासन" कहते हैं। इसी प्रकार दूसरे पांवका पंजा ऊपर पेटपर ले जाइये। जब अलग अलग पांवसे आसानीसे अर्ध कंदपीडनासन बन जायगा, तब दोनों पांवोंका कंद पीडनासन करनेका यत्न कीजिये। यह आसन अत्यंत साव-धानीसे और थोडा थोडा करना चाहिये। शीघ्रता और जबरदस्तीका प्रयत्न करनेसे कष्ट होंगे। इससे घुटनोंके दोष दूर हो जाते हैं, और मज्जाग्रंथियोंकी शुद्धता होती है।

शांतिका अनुभव।

हरएक मनुष्यको अनुभव है कि, "अशांत रहनेसे कष्ट और शांति मिलनेसे सुख होता है।" यह शांति कैसी प्राप्त की जा सकती है, इसका विचार हरएक मनुष्यको अपनी परिस्थितीके अनुसार करना आवश्यक है, तथापि शांतिके सर्वमान्य तत्त्वोंका विचार यहां करता हूं।

कई मनुष्योंका स्वभाव बडा चिडचिडा होता है। हर समय चिड जाने, अशांत होने और मनमाने शब्द बोलनेमें ये मनुष्य बडे प्रसिद्ध होते हैं। इनको किसी प्रकार भी स्वास्थ्य, शांति और समाधान हो ही नहीं सकता। इसलिये यदि ऐसा दोष हुआ, तो उसको दूर करनेका यत्न हरएकको करना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि इस स्वभावके कारण उनकी आत्मिक उन्नति होनी असंभव है। ये मनुष्य प्रायः क्रोधी होते हैं। इस क्रोधको इसीलिये जीतना चाहिये कि, इससे खूनकी खराबी होती है। जिस समय क्रोध आता है, अपने ही खूनके जीवन अणुओंको मार देता है। क्रोधसे दूसरेकी हानि होगी या न होगी इसका विचार स्वतंत्र है, परंतु क्रोधके कारण क्रोधी मनुष्यके जीवनयुक्त कीटाणुओंका नाश होता है, यह बात सत्य है। इससे स्पष्ट है कि, जिसके ऊपर यह क्रोध करता है, उसका नाश होनेके पूर्व इसी क्रोधीका नाश होता है। इसीलिये कहते हैं कि, क्रोधके कारण आयु घटती है। इतने भयानक शत्रुको अपने पास कौन रखेगा? इस कारण भगवद्गीतामें कहा है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥ ३७॥
धूमेनाव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम्॥ ३८॥

भ. गी० ३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

" यह रजोगुणसे उत्पन्न काम और क्रोध महाभोगी और पापी है यह तेरा शत्रु है जिस प्रकार धूमसे अग्नि, मलसे शीशा और चर्मसे गर्भ आवृत होता है, उसी प्रकार इस काम और क्रोधसे यह सब ढंका है। " अर्थात् काम और क्रोधके कारण सब कामी और क्रोधी अज्ञानसे युक्त होते हैं और उनको कर्तव्य अकर्तव्यका विचार नहीं होता। यह बात हरएक जान सकता है, कि क्रोधके वशमें होनेके कारण मनुष्य समय समयपर कितने अनर्थ करता है, और कैसा गिर जाता है। बाह्य अनर्थ इससे न भी हुए तो भी यह क्रोधके आवेशमें जब होता है, तब बडा अशांत होता है और शांतिसे दूर होता है। इस लिये क्रोधको छोडना चाहिये।

चिडचिडा अथवा क्रोधी मनुष्य अपना मनोरंजन करनेके लिये भी किसी स्थानपर गया, तो उसको वहीं शांति नहीं मिलती कि, जो दूसरे शांत और प्रेमी मनुष्यको प्राप्त होती है। इसलिये द्रव्यका व्यय करनेपर भी यह क्रोधी मनोरंजनसे दूर ही रहता है। कई समझते हैं कि, यह स्वभावगुण है, और दूर नहीं हो सकता। परंतु हमारा विचार है कि, यह स्वभाव धर्म होने पर भी प्रयत्न करनेपर दूर होता है। हमने कई क्रोधी मनुष्य बडे शांत और प्रेमी बने हुए देखे हैं। इसलिये अपना चिडचिडा स्वभाव दूर करनेका यत्न हरएकको अवश्य करना चाहिये।

शांति प्राप्त करनेका आसन।

(५०) शवासन, प्रेतासन, मृतासन।

भूमिमर दरी या कंबल बिछाकर उसपर दोनों हाथ और दोनों पांवोंको फैलाके आकाश या छतकी ओर मुख करके पीठसमेत सब अंग जमीनको लगाकर सोनेका नाम शवासन है। इसको मृतासन तथा प्रेतासन भी कहते हैं। बहुत श्रम होनेकी अवस्थामें यह आसन करनेसे विश्रांति मिलती है और श्रम दूर हो जाते हैं।

बहुत चलने, घूमने, दौडने अथवा अन्य प्रकार बहुत श्रम करनेपर यह आसन दस पंद्रह मिनिट करनेसे सब श्रम दूर होते हैं और शांति प्राप्त होती है।

(५१) दंडासन।

शवासनमें हाथ और पांव फैले थे, वैसे न फैलाते हुए एक पांव दूसरे पांवके पास रखिये और एक हाथ दूसरे हाथके पास रखिये, और सब शरीर पांवसे लेकर हाथके पंजेतक समरेखामें दंडवत् भूमिपर रखिये, इसका नाम दंडासन है। इसका फल भी श्रम परिहार ही है।

इन दोनों आसनोंको करनेके समय अपने सब स्नायु, अंग और अवयव बिलकुल ढीले रखने चाहिये। अपनी आत्मशक्ति शरीरसे हटाकर अपने आत्माके अंदर लानी चाहिये, और शरीर बिलकुल प्रेतके समान स्थिर करना चाहिये। सब स्नायु जितने ढीले करेंगे उतना आराम अधिक प्राप्त होगा। दस पंद्रह मिनिट करके आप फिर अपनी शक्ति शरीरमें भेजिये। इस समय आपको नवीन उत्साह प्रतीत होगा, और प्रायः सब श्रमकी थकावट दूर होगी।

इस शवासन अथवा दंडासन करनेके समय श्वास उच्छ्वास बिलकुल शनैः शनैः और आवाज बिलकुल न करते हुए करने चाहिये। श्वास अंदर जानेके समय अथवा उच्छ्वास बाहर छोडनेके समय थोडा भी आवाज न हो। परंतु पूर्णतासे श्वास अंदर जाय और पूर्णतासे बाहर भी आजाय। श्वासोच्छ्वासके आवाजका भान अपने आपको भी न हो। इस प्रकार अत्यंत शांतिसे श्वासोच्छ्वास करनेसे शवासनमें बडा लाभ होता है। श्वास और उच्छ्वासका प्रमाण सम हो, जितना दीर्घ श्वास होगा, उतना ही दीर्घ उच्छ्वास होना चाहिये। यह लंबाई आप मनमें ही अंकों या मंत्रोंकी गिनतीसे कर सकते हैं।

कुछ देर ऐसा करनेके पश्चात् जब श्वास प्रमाणमें होने लगेगा तब आप श्वासकी ओरका ध्यान हटाइये और अपने मनके विचार बंद कीजिये। जहांतक संभव हो वहांतक मनमें एक भी विचार न रखिये। तात्पर्य इस शवासनमें शरीरके स्नायुओंको ढीला करके तथा मनको भी निर्विकार करके जहां तक हो सके वहां तक शांत रहना चाहिये। आंख बंद रखिये और किसी अन्य इंद्रियका कोई भी व्यापार न कीजिये।

ऐसा शांत रहनेसे एक प्रकारकी अवर्णनीय शांति प्राप्त होती है और द्विगुणित उत्साह बढता है।

अन्य प्रकार बैठ या सोकर भी आप अपने स्नायुओंको ढीला करके कुछ आराम प्राप्त कर सकते हैं। स्नायुओंको ढीला करनेसे हमेशा शीघ्र विश्राम प्राप्त होता है। परंतु शवासनमें सबसे अधिक विश्राम प्राप्त होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आप कार्य करते करते जब थक जाते हैं, तब दस पंद्रह मिनिट उक्त प्रकार शांत श्वसनपूर्वक शवासन करके अपने स्नायु ढीले करेंगे, तो आपको पूर्ण विश्राम मिलेगा, और आपकी सब थकावट दूर होगी। न थकनेकी अवस्थामें भी दो तीन घंटे परिश्रमके पश्चात् बैठे बैठे ही अपने स्नायु ढीले और मन बिलकुल शांत करेंगे, तो आपको थकावट ही नहीं आवेगी।

जिनको अभ्याससे स्नायुओंको ढीले और मन निर्विचार करनेकी कला अवगत हुई है; वे कभी थकेंगे नहीं अथवा थकनेके पूर्व ही उक्त यौगिक क्रियासे फिर नूतन उत्साह युक्त बन जायंगे। अपने शरीरके इंद्रिय व्यापारोंमें भी परमात्माने ऐसी युक्ति रखी है कि, थोडा कार्य करनेके बाद उस इंद्रियको स्वयं ही विश्राम मिलता है। सबसे मुख्य बात यह है कि, संपूर्ण इंद्रियां एक ही समय कार्य नहीं करती, क्योंकि आत्माकी प्रेरणा ही समयान्तरके पश्चात् एक एक इंद्रियमें होती है। मन जिस समय आंखसे देखता है, ठीक उसी समय शब्दका श्रवण नहीं कर सकता। साधारणतः ऐसा होता है, इसलिये जिस समय एक इंद्रियके व्यापार चलते हैं उस समय दूसरे इंद्रियोंको विश्राम मिलता है। इतना ही नहीं प्रत्युत एक इंद्रियके व्यापार चलनेके समयमें भी प्रतिक्षण थोडी थोडी विश्रांति मनको मिलती है। उदाहरणके लिये समझ लीजिए कि, आप बोलते हैं, उस समय एक शब्द बोलनेके पश्चात् थोडी विश्रांति करके ही दूसरा शब्द बोला जाता है। हृदयका चलना भी एक आघातके पश्चात् विश्रांति लेकर दूसरा आघात होता है। श्वास उच्छ्वासकी गतिमें भी बीचमें थोडीसी विश्रांति मिलती है, इसी विश्रांतिको बढानेका नाम आंतरिक अथवा बाह्य कुंभक है। तात्पर्य मध्य समयमें विश्राम लेना निसर्ग स्वभाव ही है। इस विश्राममें आत्मा परमात्माके अभेद संबंधका अनुभव होता है। इस समय एक दूसरेमें मग्न होते हैं और जीवात्मामें बल आता है। दो दिनके बीचमें जो निद्रा आती है, इस निद्रामें भी यही होता है।

इस स्वभाव धर्मका निरीक्षण करनेसे पता लगेगा कि, दो कार्योंके बीचमें विश्रांति लेनेसे थकावट दूर होती है, और नवीन उत्साह प्राप्त होता है। यह न केवल मनुष्योंमें, परंतु पशुओंमें, वृक्षवनस्पतियोंमें और धातु आदि जड पदार्थोंमें भी है। वृक्ष भी थकते और विश्राम मिलनेसे उत्साह पूर्ण होते हैं। जो लोहेके जडयंत्र हैं, उनको भी थकावट आती है, और विश्राम न देते हुए दिन रात कार्य करनेसे शीघ्र ही बिगड जाते हैं। इसलिये मनुष्यको शवासन द्वारा अथवा अन्य प्रकार कार्य समाप्तिके पश्चात् पूर्वोक्त रीतिसे नवजीवन प्राप्त करना चाहिये। हरएक मनुष्य थोडेसे प्रयत्नसे उक्त रीतिमें निपुण हो सकता है, क्योंकि सब अन्य आसनोंसे यह सुलभ आसन है; शांत श्वसन तथा स्नायुओंका शिथिलीकरण भी बडा ही सुगम परंतु अत्यंत लाभदायक है।

आसनोंका अभ्यास करनेके समय अथवा अन्य व्यायाम करनेके समय बीच बीचमें यदि आप स्नायु शिथिल करके शांत श्वसन और मनको निर्विचार करते जायंगे, तो आपको अनुभव होगा कि ऐसा एक दो मिनिट करनेसे भी बडा लाभ होता है, और किसी प्रकार थकावट नहीं आती।

विशेष थक जानेपर इसका लाभ स्पष्ट प्रतीत होता है। अन्य कुछ भी करते हुए, यदि आप मनको निर्विचार और स्तब्ध करेंगे, तो भी आश्चर्यजनक आराम मिल सकता है। जिस समय आपको घबराहट प्रतीत होती है, स्पर्धामें कार्य करना है, कोई बडा अधिकारी आगया है, कुछ परीक्षाका समय है, अथवा कुछ अन्य कारण घबराहट हुई है, तो आप शांतिसे और अत्यंत मंद गतिसे दस बीस दीर्घ श्वास उच्छ्वास लीजिये, मन श्वासकी गतिमें रखिये और अन्य सोचना बंद कीजिये; चार पांच मिनिटोंमें ही आपकी सब घबराहट दूर होगी और मनको विशेष शांति मिलेगी। यह अनुभवकी बात है, आपको भी ऐसा ही अनुभव आ जायगा।

योग और दृष्टि।

(लेखक— प्राणपुरी)

कई व्यक्तियोंकी चक्षु-दृष्टि-मंद हो जाती है, उस समय कई रोगी तो कोई अंजन आंखमें लगाते हैं, और किसी वैद्यकी दी हुई औषधि खाते हैं। वैद्यका प्रथम काम यह होता है, कि रोगके निदानका पता लगावे। यदि वैद्यने निदानका पता ठीक लगा लिया, तब तो चिकित्सासे लाभ होता है, और यदि दुर्भाग्यवश निदानमें ही भ्रम हो जाय, तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

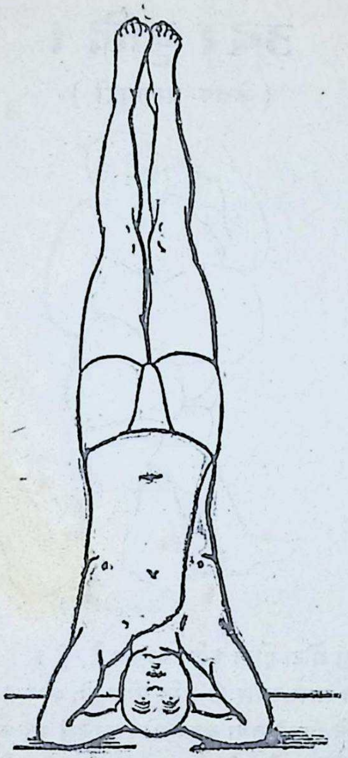

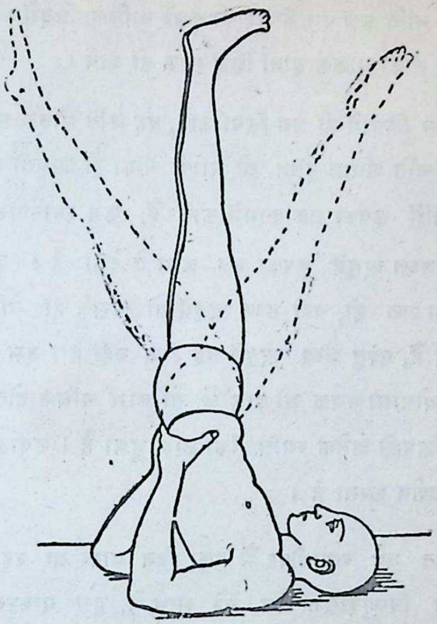

(२) विपरीत करणी सीधे लेटकर टांगोंको ऊपर उठाकर कंधोंके सहारे खडा होना, और कमरमें दोनों हाथोंको लगाकर स्थूणावत् सहारा देना । इसे विपरीत करणी कहते हैं ।

चिकित्सासे भी कोई लाभ नहीं होता है । जिस भांति चिकित्साकी अवस्था है इसी भांती योगकी आसनोंकी अवस्था है यदि सिर पीडादि रोग रुधिरके अधिक हो जानेसे हो, तब तो शीर्षासन हानिकारक और होगा यदि इसके विपरीत हो, तो लाभदायक होगा । जैसे जो ज्वर क्षुधासे हो, उसमें भोजन करना ही औषधवत् है, और यदि अजीर्णसे हो, उस समय भोजन विषवत् है ।

इसीलिये ऐसे ही योगके आसन अथवा अन्य क्रिया करने के इच्छुकका प्रथम कर्तव्य है, उस रोगके कारणका पता लगाना । निश्चय होनेपर पीछे काम करना ।

जो आसन और क्रियाएं चक्षुदृष्टिके लिये लाभकारी हैं, अब मैं उनका वर्णन करता हूं—

(१) शीर्षासन इसका वर्णन कईवार आगे हो चुका है, इसलिये इसपर अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है । जो व्यक्ति मस्तिष्क संबंधी अधिक काम करते हैं, यदि उन्हें दृष्टिमंदका रोग हो, उनके लिये यह आसन विशेष लाभदायक है ।

इन दोनों आसनोंके अतिरिक्त कुछ और भी साथ साथ करना चाहिये । कई स्थानोंपर वो आसन न करने पर भी इस क्रियाके करनेसे ही पर्याप्त लाभ हो गया और यह क्रिया करनी अत्यन्त सुगम है । इसका नाम है—

“ जलकी नेति ”

इसका विधि निम्नलिखित है । एक टूटीदार बर्तनमें जल डाल लें । बर्तन टूटीदारसे प्रयोजन उसी भांतिके बर्तनसे है, जैसे साधुओंके पास कमंडलु होता है, वैसा हो, अथवा जिसे पंजाबमें गंगासागर कहते हैं, जो गडवे जैसा होता है, और उसमें एक ओर टूटी लगी होती है, अथवा जैसा मुसलमानोंका लोटा होता है, वैसा हो । उस पात्रकी टूटीको नासिकाके एक छिद्रमें लगाकर सिरको थोडासा दूसरी ओर झुकाकर उस पात्रसे जल डाले और उस समय श्वास मुंहसे ले और यत्न यह करे कि, जल जो नासिकाके छिद्रमें पात्रसे जाता है, वह नासिकाके दूसरे छिद्रसे निकले । इसी भांति कोई आध सेर जल एक छिद्रमें डालकर निकाल दे । और फिर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसी भांति उस पात्रकी टूटीको दूसरे नासिका छिद्रमें लगाकर करे । ताकी नाकके दोनों छिद्र साफ हो जावं ।

इस क्रियामें जो जल लिया जाय, वह अति शीतल न हो । यदि अति शीतल होगा, तो माथेमें पीडा हो जायगी । जिन स्थानोंमें कूपका जल काममें लाते हैं, उन स्थानोंपर शीत और उष्ण ऋतुमें कूपका जल काम दे देता है । जहांपर नलका जल हो, वहां उष्ण ऋतुमें तो उससे ही नेति कर सकते हैं, परंतु शीत ऋतुमें वह ठीक नहीं है । उस समय उसे थोडासा नमक भी डाल लें, तो लाभ अधिक होता है । इस क्रियासे अनेक व्यक्तियोंको लाभ हुआ है । उदाहरणार्थं एक वर्णन करता हूं ।

गत वर्ष गयाजीपर मैं एक दिन बाहर जा रहा था, पंडित विष्णुदासजी वैद्य मेरे साथ थे, हम परस्पर इसी विषयपर बातें करते जाते थे । आगे नदी तटपर एक व्यक्तिने स्नानार्थ वस्त्र उतारे और जलके पास जाकर प्रथम उसने नेति करनी आरंभ की । पंडितजीने कहा, इनसे पूछें, यह क्यों ऐसा करते हैं ? हम उसके समीप गए, और वही प्रश्न किया । उसने उत्तर दिया, मुझे जुकाम अधिक रहता था, एक महात्माने यह उपाय बताया । मैं इसे लगभग एक वर्षसे करता हूं । मैंने कहा आपको क्या लाभ हो गया ? उसने उत्तर दिया, जुकाम तो छूट गया, उसके अतिरिक्त एक लाभ और हुआ जिसके लिये मैंने इसे छोडा नहीं, किये जाता हूं । पंडितजीने कहा वह क्या है ? उसने कहा, मैं पहले दीपकके आलोकमें अक्षर नहीं देख सकता था, किंतु अब भलीभांती पढ सकता हूं, और मेरी दृष्टी पहलेसे बहुत अच्छी है । उसकी आयु ५० वर्षसे ऊपर थी ।

इसलिये यदि जलकी नेति प्रतिदिवस की जाय, तो नेत्रोंके लिये अत्यंत लाभदायक है, अनेक स्थानोंपर इसका परीक्षण किया है ।

यदि कोई इससे भी अधिक लाभका आकांक्षी हो, तो उसे आगेकी नेति करनी चाहिये ।

उदर वृद्धि ।

(लेखक-प्राणपुरी)

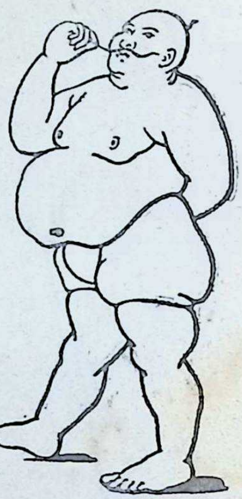

शरीरका मोटा होना कई प्रकारका है, [१] एक तो वह है, जिसका सारा शरीर ही अति मोटा हो, और इसी मोटाईके कारण चलने फिरने तथा अन्य कार्य करनेमें भी कठीनाई हो । [२] दूसरे वह है, जो इतना मोटा शरीर हो, जो चलने फिरनेमें तो कोई कठिनाई न हो, परन्तु जो काम फुरतीसे किये जाते हैं, उन्हें न कर सके; और धीरे धीरे शरीर मोटेपनकी ओर बढ रहा है ।

[३] तीसरे वह शरीर जिसमें अन्य शरीरकी अपेक्षा केवल पेट बढ जाय अथवा पेटके अतिरिक्त शरीर पतला पड जाय । कई बार यह पेट वृद्धि उन बालकोंको हो जाती है, जिन्हें दूध नहीं मिलता है, और रूखा अन्न ही मिलता है । उस अवस्थामें भुजाएं और टांगें पतली हो जाती है, और पेट बढ जाता है; इसी बालकके सदश कई व्यक्तियोंका पेट बढ जाता है और कईयोंका शेष शरीर पतला नहीं होता है, तो भी पेट अपेक्षासे अधिक बढ जाता है ।

उपरोक्त तीनों प्रकारकी स्थूलताकी चिकित्सा यदि औषधि उपयोगको छोडकर, योगकी रीतिसे करनी हो, तो योगकी क्रियाओं और आसनों द्वारा की जाती है । इस लेखमें मैं प्रथम और दूसरे प्रकारकी मोटाईका कोई उपाय नहीं लिखूंगा, केवल तीसरे प्रकारकी मोटाईका ही वर्णन करूंगा, और यह उपाय कई व्यक्तियोंने किया है, और उनका उदर न्यून हो गया है । इसीलिये मैंने यह लेख लिखनेका उत्साह किया है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

सप्तम मंडल

[१]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- विराट् , १९-२५ त्रिष्टुप् ।)

१ अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥ १ ॥

२ तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दुक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥ २ ॥

अर्थ— [१] (नरः प्रशस्तं दूरेदृशं) नेता लोग प्रशंसा करने योग्य, दूरदर्शी (गृहपतिं अथर्युं) अपने घरोंका पालन करनेवाले प्रगतिशील (अग्निं) अग्निको (अरण्योः) दोनों अरणियोंमेंसे (हस्तच्युती) हाथोंकी कुशलतासे (दीधितिभिः जनयन्त) अपनी अंगुलियोंके द्वारा निर्माण करते हैं ॥ १ ॥

[२] (यः दुक्षाय्यः) जो दक्ष रहनेवाला अथवा बलवान् (नित्यः दमे आस) सदा अपने स्थानमें रहता था, (तं सुप्रतिचक्षं अग्निं) उस उत्तम दर्शनीय अग्निको (कुतः चित्) सब ओरसे (अवसे) सबकी सुरक्षा करनेके लिये (वसवः) निवास कर्ताओंने (अस्ते नि ऋण्वन्) अपने घरमें, रहनेके स्थानमें लाकर रख दिया ॥ २ ॥

भावार्थ— नेता लोग प्रशंसाके योग्य, दूरदर्शी, अपने घरोंकी सुरक्षा करनेमें समर्थ और प्रगतिशील अग्रणीको प्रकाशित करते हैं। उसके निज तेजसे ही वह अग्रणी प्रकाशित होता है, उसे अन्य मनुष्यगण अपने प्रयत्नसे आगे बढावें। मनुष्य लोगोंको प्रशस्तमार्गसे चलावे। अपने घर, अपने समाज और अपने राष्ट्रकी रक्षा करनेमें समर्थ हो। वह स्वयं भी प्रगतिशील हो ॥ १ ॥

बलवान् पुरुष सदा अपने घरमें रहे और घरकी सुरक्षा सावधानीसे करता रहे। मनुष्य भी ऐसे वीर पुरुषको सब ओरसे अपनी सुरक्षा करनेके लिये आदरसे अपने घर बुलावें और उसका भरपूर आदर करें। राष्ट्रके नागरिक ऐसे वीर पुरुषको अपनी सुरक्षाके कार्यमें नियुक्त करें। मनुष्य अपने बलके कारण ही सत्कारके योग्य होता है। ऐसा वीर अपने समाजमें संचार करके सर्वत्र निर्भयता स्थापित करे ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३ प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नो ऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥ ३ ॥
४ प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥ ४ ॥
५ दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥ ५ ॥
६ उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥ ६ ॥

अर्थ— [३] हे (यविष्ठ अग्ने) तरुण अग्ने ! (प्र इद्धः अजस्रया सूर्म्या) प्रदीप्त होकर प्रचण्ड ज्वालाओंसे (नः पुरः दीदिहि) हमारे सन्मुख प्रकाशित हो । (त्वां शश्वन्तः वाजाः उपयन्ति) तेरे पास बहुत अन्न और बल आते रहते हैं । ॥ ३ ॥

[४] (अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः) अग्नियोंसे भी अधिक तेजस्वी (ते सुवीरासः अग्नयः) वे उत्तम वीररूप अग्नि (प्र निः शोशुचन्त) विशेष रीतिसे अधिक प्रकाशित होते हैं । (यत्र सुजाताः नरः) जहां उत्तम कुलीन वीर (सं आसते) संगठित होकर बैठते हैं ॥ ४ ॥

इस मंत्रके स्मरण करने योग्य वाक्य—

१ अग्निभ्यः वरं द्युमन्तः सुवीरासः— अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हमारे वीर हों । हमारे पुत्र पौत्र ऐसे वीर हों कि जो अग्निसे भी अधिक तेजस्वी हों ।

२ सुजाताः नरः समासते— उत्तम कुलीन पुरुष एक स्थानपर बैठते हैं । एक स्थानपर बैठकर संघटना करते हैं ।

[५] हे (सहस्य अग्ने) शत्रुका पराभव करनेमें कुशल अग्ने ! (नः) हमें (सुवीरं स्वपत्यं प्रशस्तं रयिं) जिसके साथ वीर हों, उत्तम संतति हों, ऐसे प्रशंसित धनको (धिया दाः) बुद्धिके साथ दो । (यं यातुमावान् यावा न तरति) जिसको हिंसक शत्रु कभी बाधा नहीं कर सकता ॥ ५ ॥

[६] (यं सुदक्षं) जिस उत्तम बलवानके पास (हविष्मती घृताची युवतिः) अन्नवाली घृत परोसनेवाली तरुणी (दोषा वस्तोः) रात्रीके और दिनके समय (उप एति) जाती है, (एनं स्वा वसूयुः अरमतिः उपैति) उसके पास धनके साथ रहनेवाली बुद्धि भी होती है ।

भावार्थ— तरुण अग्रणी अपने अतुल तेजसे सर्वत्र प्रकाशित होता रहे । जो ऐसा तेजस्वी होगा उसके पास अन्न और बल स्वयं उपस्थित होते रहेंगे। जो बलवान् और तेजस्वी होगा, उसे अन्न और बल स्वयं प्राप्त होते रहेंगे और उसका बल अधिकाधिक बढता जाएगा ॥ ३ ॥

जहां उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वीर उत्तम रीतिसे संगठित होकर रहते हैं, वहां उत्तम वीर अग्निसे भी अधिक तेजस्वी होकर प्रकाशते हैं । इसलिये वीर अपना और अपने समाजका संगठन करें । सब एक विचारसे कार्य करें और उत्तम वीरोंको अपनी वीरता और अधिक दिखानेके लिए अवसर दें ॥ ४ ॥

हे अग्ने ! हमें उत्तम वीर सन्ततियोंसे युक्त ऐश्वर्य प्रदान करो । वह ऐसा हो कि जिससे शत्रुका पराभव हो । जिस धनकी रक्षा करनेके लिए वीर सन्तति होगी ही नहीं, तो वह धन निश्चित रूपसे नष्ट हो जाएगा । धन हरतरहसे प्रशंसित हो, निन्दनीय साधनोंसे धन प्राप्त न किया जाए ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

७ विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥ ७ ॥

८ आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक ।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥ ८ ॥

९ वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥ ९ ॥

१० इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥ १० ॥

अर्थ— [७] हे (अग्ने) अग्ने ! (विश्वाः अरातीः तपोभिः अप दह) सब शत्रुओंको अपने तेजोंसे जला, (येभिः जरूथं अदह) जिनसे कठोर भाषी शत्रुको तूने जलाया था, तथा (अमीवां निःस्वरं प्र चातयस्व) रोगोंको निःशेष रीतिसे हटा ॥ ७ ॥

[८] हे (वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक अग्ने) हे निवास हेतु शुद्ध तेजस्वी पवित्रता करनेवाले अग्ने ! (यः ते अनीकं आ इधते) जो तेरे तेजको प्रदीप्त करता है; उन (नः उतो एभिः स्तवथैः इह स्याः) हम सबके पास इन प्रशंसा स्तोत्रोंके साथ आकर यहां रह ॥ ८ ॥

[९] हे अग्ने ! (ते अनीकं) तेरा तेज, (पित्र्यासः मर्ताः नरः) पितरोंका हित करनेवाले मर्त्य लोगोंने (पुरुत्रा विभेजिरे) अनेक स्थानोंमें, अनेक देशोंमें फैलाया है, उनके समान (नः उतो एभिः सुमना इह स्याः) हमारे इन स्तोत्रोंसे प्रसन्न होकर तुम यहां रहो ॥ ९ ॥

[१०] (ये मे प्रशस्तां धियं पनयन्त) जो मेरी प्रशंसनीय बुद्धिकी स्तुति करते हैं, (इमे नरः वृत्रहत्येषु शूराः) वे ये नेता वृत्र वध करनेके लिये शुद्ध किये युद्धमें शूरवीरता करनेवाले वीर पुरुष (अदेवीः विश्वाः मायाः अभि सन्तु) सब आसुरी कपटोंको पराभूत करें ॥ १० ॥

भावार्थ— इस बलवान् अग्निके पास अन्नवाली और घृत परोसनेवाली एक तरुणी दिनरात जाती है । यह तरुण अग्नि है और उसके पास जानेवाली घृतसे युक्त तरुणी जुहु या स्रुवा है । स्रुवामें घी या हवि भरकर अग्निमें आहुति डाली जाती है । यह वर्णन रूपक अलंकारका एक उत्तम उदारण है । इस अलंकारमें यह भी कहा गया है कि यह तरुणी बुद्धि युक्त है । जो स्रुवासे हवि देता है, वह बुद्धिपूर्वक हवि प्रदान करता है ॥ ६ ॥

अपने तेजोंसेही शत्रुओंको दूर करना चाहिए, समाजमें जो कठोरभाषी हों, उन्हें दूर करना चाहिए, इसी तरह जो रोग हों, उन्हें भी दूर करना चाहिए । कठोरभाषी शत्रुको अपनेही तेजसे लज्जित करना चाहिए, इसी तरह अपने तेजोंसे शत्रुओंके तेजको निस्तेज करना चाहिए । अपनी शारीरिक सहिष्णुता तथा आत्मिक शक्तिसे रोगोंको भी दूर करना चाहिए । अग्निका जीवनरस जिस मनुष्यमें प्रबल होता है, उसके शरीरमें रोग नहीं घुस सकते ॥ ७ ॥

लोगोंको उत्तम रीतिसे निवास करानेवाला स्वयं शुद्ध और पवित्र हो । ऐसा स्वयं तेजस्वी और सबकी पवित्रता करनेवाला वीर अग्निके समान तेजस्वी होता है । इसका सैन्य या बल इसका सामर्थ्य ही है । ऐसे तेजस्वी पुरुषकी प्रशंसा सब करते हैं और यह अपने पास आकर रहे, ऐसा भी चाहते हैं । पवित्र, बलिष्ठ, तेजस्वी और सर्वत्र पवित्रता करनेवाला मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी होता है । ऐसा वीर समाजमें आकर रहे ताकि समाज उन्नतिशील हो ॥ ८ ॥

अपने उपास्य देवका यश जिस तरह हमारे पूर्वज पितर देश विदेशमें फैलाया करते थे, उसी तरह हम भी करें । ऐसा करनेसे ही प्रभु प्रसन्न होंगे । देशविदेशमें धर्मका प्रचार करना चाहिए और सबको आदर्श बनाना चाहिए ॥ ९ ॥

प्रशंसा योग्य बुद्धि और उत्तम कर्मकी सब लोग प्रशंसा करें । युद्धमें उपस्थित शूरवीर नेता असुरोंके तथा शत्रुपक्षके सब कपट जालोंको दूर करके अपनी विजयके लिए प्रयत्न करें ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

११ मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥ ११ ॥
१२ यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥ १२ ॥
१३ पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥ १३ ॥
१४ सेदग्निरग्नींरत्यस्त्वन्यान् यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥ १४ ॥

अर्थ— [११] हे अग्ने। (शूने मा नि सदाम) पुत्र पौत्रादि रहित शून्य घरमें हम न रहें। हे (दुर्य) घरके लिये हित कर्ता ! (नृणां) मनुष्योंके बीचमें हम ही (अ-शेषसः अवीरता मा) पुत्र पौत्र रहित तथा वीरता रहित न रहें। (प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि) पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त घरोंमें हम तेरी उपासना करते हुए रहें ॥ ११ ॥

१ शूने मा निसदाम— पुत्र पौत्र रहित, संतान हीन घरमें हम न रहें। हम ऐसे घरोंमें रहें कि जहां पुत्र पौत्र प्रपौत्र बहुत हों। पुत्रोंसे घर भरे हुए हों।

२ नृणां अशेषसः अवरिता मां— मनुष्योंमें पुत्ररहित तथा वीरता रहित जीवन बहुत बुरा है, वैसा जीवन हमें कभी प्राप्त न हो।

३ नृणां मा निसदाम— दूसरे मनुष्योंके घरमें रहनेका अवसर हमें न प्राप्त हो। हम अपने घरमें रहें। रहनेका घर अपना हो।

४ प्रजावतीषु दुर्यासु त्वा परि निसदाम— संतानोंसे युक्त घरोंमें प्रभुकी उपासना करते हुए हम रहें।

[१२] (यं यज्ञं अश्वी नित्यं उपायति) जिसके पास पूजनीय अश्वारूढ अग्नि जैसा तेजस्वी वीर जाता है (तं प्रजावन्तं स्वपत्यं) वैसा प्रजावाला उत्तम संतानवाला (स्वजन्मना शेषसा ववृधानं) अपनेसे उत्पन्न हुए औरस संतानसे बढनेवाला (क्षयं नः देहि) घर हमें दो ॥ १२ ॥

[१३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अजुष्टात् रक्षसः नः पाहि) संबंध रखनेके लिये अयोग्य ऐसे दुष्ट राक्षसोंसे हमें बचाओ। (अररुषः अघायोः धूर्तेः पाहि) दुष्ट पापी धूर्तसे हमें सुरक्षित कर। (त्वा युजा पृतनायून् अभिस्यां) तुम्हारी सहायतासे सेना लेकर हमला करनेवाले शत्रुका भी हम पराभव करेंगे ॥ १३ ॥

[१४] (यत्र वाजी वीळुपाणिः) जहां बलवान् सुदृढ शस्त्रधारी (सहस्र-पाथाः तनयः) सहस्रों प्रकारके धनस्रोतोंसे युक्त अपना पुत्र (अक्षरा सं एति) अक्षरोंसे ज्ञानोंसे युक्त होता है, स्तोत्रोंसे अग्निकी उपासना करता है, (स इत् अग्निः) वही अग्नि (अग्नीन् अति अस्तु) अन्य अग्नियोंसे श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

भावार्थ— पुत्रोंसे रहित अर्थात् सन्तानहीन घरमें हमें न रहना पडे। हमारे पुत्र पौत्र हमारे घरमें रहें। हमारा घर बालबच्चोंसे भरा रहे। बाहर भी हम जिसके घरमें रहें, वे घर भी बाल-बच्चोंसे भरपूर हो। पुत्रहीन तथा वीरताहीन जीवन बुरा है। बालबच्चोंसे भरे हुए घरमें रहकर हम प्रभुकी भक्ति किया करें ॥ ११ ॥

घर ऐसे हों कि जो पुत्रपौत्रादि सन्तानोंसे युक्त हों, अपने घरमें औरस सन्तानें हों, और ये औरस सन्तानें घरकी शोभा बढानेवाली हों। दूसरेकी संतानोंको दत्तकके रूपमें न लेना पडे। औरस सन्तानोंसेही घरकी समृद्धि बढे ॥ १२ ॥

मनुष्य राक्षसोंसे अपना बचाव करे, पापी और छली दुष्टोंसे अपने आपको सुरक्षित रखे और सेना लेकर आक्रमणकारी शत्रुका पराभव करनेके लिए तैय्यार रहे ॥ १३ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

१५ सेदुग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥ १५ ॥
१६ अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥ १६ ॥
१७ त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥ १७ ॥
१८ इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥ १८ ॥

अर्थ— [१५] (यः समेद्धारं वनुष्यतः निपाति) जो जगानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करता है, (उरुष्यात् अंहसः निपाति) अधिक पापसे बचाता है, (यं सुजातासः वीराः परिचरन्ति) जिसकी पूज कुलीन वीर पुत्र करते हैं (सः इत् अग्निः) वही श्रेष्ठ अग्नि है ॥ १५ ॥

१ समेद्धारं वनुष्यतः निपाति— जनानेवालेकी हिंसकसे सुरक्षा करो
२ उरुष्यात् पापात् निपाति— पापसे बचाओ,
३ सुजातासः वीराः परिचरन्ति— उत्तम कुलिन वीर पुत्र बैठकर पूजा करें । जहां पुत्र ऐसा करते हैं वह घर श्रेष्ठ है ।

[१६] (यं हविष्मान् ईशानः सं इन्धे) जिसको हविष्यान्न देनेवाला ऐश्वर्यवान् याजक प्रदीप्त करता है, (यं होता अध्वरेषु परि एति) जिसको होता हिंसारहित यज्ञोंमें प्रदक्षिणा करता है (सः अयं अग्निः पुरुत्रा आहुतः) वह यह अग्नि है कि जो बहुतवार आहुतियोंसे हुत हुआ है ॥ १६ ॥

[१७] हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वे ईशानासः) तेरी कृपासे धनके स्वामी बने (नित्या उभा वहतू कृण्वन्तः) नित्य करने योग्य दोनों प्रकारके स्तोत्र तथा शस्त्र करनेवाले हम (मियेधे भूरि आहवनानि जुहुयाम) यज्ञमें बहुत प्रकारका हवन तेरे लिये करते हैं ॥ १७ ॥

[१८] हे (अग्ने) अग्ने ! तू (अजस्रः इमो वीततमानि) अखंडितरीतिसे ये अत्यंत प्रिय (हव्या) हवन द्रव्य (देवतातिं अभि वक्षि) देवताओंके समूहके पास पहुंचा (अच्छ गच्छ च) और वहां सीधा जा । (नः ईं सुरभीणि प्रतिव्यन्तु) हमारे ये सुगंधित हविर्द्रव्य प्रत्येक देवताको प्रिय हो ॥ १८ ॥

भावार्थ— मनुष्यका औरस पुत्र बलवान् हो। वेदके उपर्युक्त कथनका यह अर्थ नहीं कि उसका दत्तक पुत्र बलवान् न हो, अपितु उसका मतलब यह हैं कि मनुष्य पर दत्तक पुत्रको लेनेकी नौबतही न आए । सभीके अपने औरस पुत्र हों, यही इसका अर्थ है । ऐसा औरस पुत्र बलवान् हो, शूर हो, शस्त्रधारी हो, धन अन्न युक्त हो, विद्वान् हो । ऐसा पुत्र जिस अग्निमें हवन करता है, वही अग्नि श्रेष्ठ है । ऐसी शिक्षाका प्रबन्ध देशमें सर्वत्र होना चाहिए ॥ १४ ॥

जो अपने प्रदीप्त करनेवालेकी हर तरहसे रक्षा करता है, उसे हर पापसे बचाता है । मनुष्यके औरसपुत्र जिसकी पूजा करते हैं, वही अग्नि सबसे श्रेष्ठ है । जो इसें सावधान करके उत्तम मार्गपर चलनेके लिए प्रेरित करता है, उसकी हर तरहसे रक्षा करनी चाहिए । उसे पापसे बचाना चाहिए । घरमें सभी सदस्य मिलकर अग्निकी पूजा करें ॥ १५ ॥

श्रेष्ठ अग्निको ऐश्वर्यशाली याजक अर्थात् यज्ञ करनेवाला मनुष्य प्रदीप्त करता है और हिंसारहित यज्ञोंकी प्रदक्षिणा करता है । इस अग्निमें यजमान अनेकबार आहुतियां देता है ॥ १६ ॥

हे अग्ने ! तेरी कृपासे हम धनके स्वामी बनें । तेरे लिए स्तोत्र तथा आत्मरक्षाके लिए शस्त्र तैय्यार करनेवाले हम यज्ञमें बहुत प्रकारकी आहुतियां तेरे लिए प्रदान करते हैं ॥ १७ ॥

हे अग्ने ! हम यज्ञकी अग्निमें जो अखण्डित रूपसे तुझे अत्यन्त प्रिय लगनेवाले हविद्रव्य डालते हैं, उन द्रव्योंको तू देवोंके समूहतक पहुंचा । हमारे द्वारा दिए गए ये सुगंधित द्रव्य देवोंको अत्यन्त प्रिय और रुचिकर लगे ॥ १८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

१९ मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥ १९ ॥

२० नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २० ॥

२१ त्वमग्ने सुहवो रण्वसंदृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥ २१ ॥

अर्थ— [१९] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः अवीरते मा पराशाः) हमें पुत्रहीनता न प्राप्त हो । (दुर्वाससे
च नः मा परादाः) मलिन वस्त्र परिधान करनेकी अवस्थाको हमें न पहुंचा । (अस्यै अमतये नः मा परा दाः) इस
निर्बुद्धताको हमें न पहुंचा । (नः क्षुधे मा) हमें भूखके कष्ट न हों । (मा रक्षसः) राक्षस हम पर हमला न करें । हे
(ऋतावः) सत्यवान् अग्ने ! (नः दमे मा) हमें घरमें कष्ट न हों (वने मा आजुहूर्थाः) हमें वनमें कष्ट न हों ॥१९॥

[२०] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नुउत् शशाधि) मेरे लिये अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर । हे
(देव) तेजस्वी अग्नि देव ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिये
अन्नोंको प्रेरित कर । (ते रातौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहेंगे । (यूयं सदा नः
स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित करो ॥ २० ॥

[२१] हे (सहसः सूनो अग्ने) बलसे उत्पन्न होनेवाले अग्ने ! (सुहवः रण्वसंदृक्) उत्तम प्रार्थित
होनेवाला और रमणीय दीखनेवाला तू (सुदीती दिदीहि) ज्वालाओंसे प्रकाशित हो । (तनये नित्ये त्वे सचा)
पुत्रके लिये नित्य सहायक होकर (मा आ धक्) उसे मत् जला । (वीरः नर्यः मा अस्मत् वि दासीत्) वीर और
मानवोंका हित करनेवाला पुत्र हमसे विनष्ट न हो ॥ २१ ॥

भावार्थ— हमारे पास पुत्रहीन अवस्था न आवे । हमें कभी बुरे वस्त्र पहनना पडे, ऐसी स्थिति भी हमें न प्राप्त हो । हम कभी बुद्धिहीन भी न हों । भूख हमें न सतावे । राक्षस हम पर हमला न करे । हम चाहे घरमें रहें, चाहे वनमें, अर्थात् हम कहीं भी रहें, हमें किसीतरहका कष्ट न हो, हम सर्वत्र प्रसन्न रहें ॥ १९ ॥

मनुष्य भक्षण करने योग्य अन्नको परिशुद्ध रीतिसे तैय्यार करे । ऐसे अन्न मलिन या मैले हाथोंसे न बनाये गए हों । जो अन्नसे युक्त हैं, उन्हें भी उत्तम अन्न मिलते रहें । प्रभुके दानके हम सब भागी हों, अर्थात् हम सबको प्रभुका दान मिलता रहे । हम प्रभुकी भक्ति करें और प्रभु हमें प्रसन्न होकर उत्तम अन्न प्रदान करते रहें । प्रभु अपने कल्याणमय हाथोंसे हमारी रक्षा सदा करते रहें ॥ २० ॥

हे अग्ने ! तू हमारे घरमें रोज प्रदीप्त होता रह और अपनी प्रदीप्त ज्वालाओंसे हमारे यहां प्रकाशित हो । हमारे घरमें जितने पुत्रपौत्र हों, उनका तू रक्षक हों, उन्हें तू कष्ट न दे । हमारा पुत्र वीर और मनुष्योंका हित करनेवाला हो, वह कभी विनष्ट या अपमृत्युका शिकार न हो । मनुष्यका पुत्र इतना सुन्दर हो कि सभी उसे देखकर प्रसन्न हों और अपने पास बुलानेकी इच्छा करें ॥ २१ ॥

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF
Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२२ मा नो॑ अग्ने दुर्भृ॒तये॒ सचै॒षु दे॒वेद्धे॑ष्व॒ग्निषु॒ प्र वो॑चः ।
मा ते॑ अ॒स्मान् दु॑र्म॒तयो॒ भृ॒माच्चि॑द् दे॒वस्य॑ सूनो सहसो नशन्त ॥ २२ ॥
२३ स मर्तो॑ अग्ने स्वनीक रे॒वा-नम॑र्त्ये॒ य आ॑जु॒होति॑ ह॒व्यम् ।
स दे॒वता॑ वसु॒वनिं॑ दधा॒ति यं सू॒रिर॒र्थी पृ॒च्छमा॑न॒ एति॑ ॥ २३ ॥
२४ म॒हो नो॑ अग्ने सुवि॒तस्य॑ वि॒द्वान् र॒यिं सू॒रिभ्य॒ आ व॑हा बृ॒हन्त॑म् ।
येन॑ व॒यं स॑हसाव॒न् मदे॒मा-ऽवि॑क्षितास॒ आयु॑षा सु॒वीराः॑ ॥ २४ ॥

अर्थ— [२२] हे अग्ने ! (सचा देवेद्धेषु एषु अग्निषु) तू हमारा साथी है अतः तू देवों द्वारा प्रदीप्त किये अग्नियोंको (नः दुर्भृतये मा प्रवोचः) हमारे भरण पोषण न करनेके लिये न कहना । हे (सहसः सूनो) बलसे उत्पन्न होनेवाले पुत्र ! (देवस्य ते दुर्मतयः) प्रकाशमान होनेवाले तेरी बुद्धियां हमारे विषयमें कदापि दोष युक्त न हों; (भ्रमात् चित् नशंत) भ्रमसे भी हम पर तुम्हारा विरोधी भाव न हो ॥ २२ ॥

१ सचा नः दुर्भृतये मा प्रवोचः— कोई साथी अपने मित्रोंके भरणपोषणमें बाधा डालनेका यत्न न करे ।

२ दुर्मतयः मा— कोई मित्र अपने साथीके संबंधमें बुरे विचार प्रकट न करे ।

३ भ्रमात् चित् सचा मा नशंत— भ्रमसे भी मित्रके विषयमें उसका साथी बुरे विचार प्रकट न करे ।

[२३] हे (स्वनीक अग्ने) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! (अमर्त्ये यः हव्यं आ जुहोति) अमर ऐसे तुझ अग्निमें जो हवन करता है । (सः मर्तः रेवान्) वह मनुष्य धनवान् होता है । (यं सूरिः अर्थी पृच्छमानः एति) जिसके विषयमें ज्ञानी और धनकी कामना करनेवाला पूछता हुआ आता है (सः देवता वसुवनिं दधाति) वह देवताके उद्देश्यसे धन अर्पण करता है ॥ २३ ॥

[२४] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः महो सुवितस्य विद्वान्) हमारे बडे कल्याणकारक कर्मके ज्ञाता तू है । (सूरिभ्यः बृहन्तं रयिं आ वह) विद्वानोके लिये उस बडे ऐश्वर्यका प्रदान कर । हे (सहसाऽवन्) बलसे संरक्षण करनेवाले अग्ने ! कि (येन वयं आयुषा अविक्षितासः) जिससे हम आयुसे क्षीण न होते हुए, पूर्णायुषी होकर, (सुवीराः मदेम) उत्तम वीर पुत्र पौत्रोंके साथ आनंदसे रहें ॥ २४ ॥

भावार्थ— मित्र कभी ऐसा काम न करे कि जिससे उसके मित्र की हानि हो । मित्रके जीवन या भरणपोषण पर आंच आवे, ऐसा कोई काम मनुष्य न करे । मित्रकी कभी निन्दा न करे । सदा उसके गुणोंका ही लोगोंके सामने बखान करे, उसके अन्दरके दुर्गुणोंको छिपाये रखे । मित्रके बारेमें कोई आकर यदि कोई कुछ भ्रम भी फैलाये, तो भी उस भ्रमकी बातोंमें आकर अपने मित्रका बुरा न करे ॥ २२ ॥

इस अमर अग्निमें जो नित्य हवन करता है, वह मनुष्य धनवान् होता है । मनुष्यके पास धनकी अभिलाषासे यदि कोई ज्ञानी आए, तो वह मनुष्य यह समझकर कि इस ज्ञानीके रूपमें स्वयं देवता ही धनार्थी होकर पधारे हैं, उस ज्ञानीको भरपूर धन दे ॥ २३ ॥

हे अग्ने ! तू हमें उत्तम और कल्याणकारक कर्मोंका उपदेश कर और विद्वानोंको उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर । हम क्षीण आयुवाले न होकर उत्तम वीर पुत्र और पौत्रोंके साथ आनन्दसे रहें । जिससे कल्याण हो, उस मार्गको जानना चाहिये । ज्ञानियोंको धनका दान करना चाहिए । मनुष्य ऐसा कर्म करे कि जिससे वह पूर्णायु भोगे और अपने वीर और उत्तम पुत्र और पौत्रोंके साथ हृष्टपुष्ट हो ॥ २४ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२५ नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ २५ ॥

[२]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता- आप्रीसूक्तं = (१ इध्मः समिद्धोऽग्निर्वा, २ नराशंसः, ३ इळः, ४ बर्हिः, ५ देवीर्द्वारः, ६ उषासानक्ता, ७ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ, ८ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः, ९ त्वष्टा, १० वनस्पतिः, ११ स्वाहाकृतयः)। छन्दः- त्रिष्टुप्।

२६ जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद् यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥ १ ॥
२७ नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ २ ॥

अर्थ— [२५] हे (अग्ने) अग्ने ! (मे ब्रह्माणि नु उत् शशाधि) मेरे लिए अन्नोंको उत्तम प्रकारसे पवित्र कर। हे (देव) तेजस्वी अग्ने ! (त्वं मघवद्भ्यः सुषूद) तू हम सब हविर्द्रव्यरूप धनोंको धारण करनेवालोंके लिए अन्नोंको प्रेरित कर। (ते रात्रौ उभयासः आ स्याम) तेरे दानमें हम दोनों लेनेवाले होकर रहें। (यूयं सदा नः स्वस्तिभिः पात) तुम सदा हमें कल्याण करनेवाले साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥ २५ ॥

[२]

[१६] हे (अग्ने) अग्ने ! (नः समिधं अद्य जुषस्व) हमारी समिधाका आज स्वीकार करो। (यजतं धूमं ऋण्वन्) प्रशस्त धूमको फैलाकर (बृहत् शोच) बहुत प्रकाशित हो। (दिव्यं सानु स्तूपैः रश्मिभिः उपस्पृश) अन्तरिक्षमें पहुंचे पर्वतके ऊंचे भागको अपनी तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो। (सूर्यस्य रश्मिभिः संततनः) सूर्यके किरणोंके साथ मिलकर रहो ॥ १ ॥

[२७] (ये देवाः सुक्रतवः) जो देव उत्तम यज्ञका संपादन करनेवाले हैं, (शुचयः धियंधाः) शुद्ध हैं और बुद्धिका वा कर्म शक्तिका धारण करते हैं, वे (उभयानि हव्या स्वदन्ति) दोनों प्रकारके हविर्द्रव्योंका आस्वाद लेते हैं। (एषां) उनके मध्यमें (नराशंसस्य यजतस्य) नरोंद्वारा प्रशंसित तथा पूजनीय अग्निकी (महिमानं) महिमाको (यज्ञैः उपस्तोषामः) हविर्द्रव्योंके अर्पणके साथ हम वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

भावार्थ— मनुष्य भक्षण करने योग्य अन्नको परिशुद्ध रीतिसे तैय्यार करे। ऐसे अन्न मलिन या मैले हाथोंसे न बनाये गए हों। जो अन्नसे युक्त हैं, उन्हें भी उत्तम अन्न मिलते रहें। प्रभुके दानके हम सब भागी हों अर्थात् हम सबको प्रभुका दान मिलता रहे। हम प्रभुकी भक्ति करें, और प्रभु हमें प्रसन्न होकर उत्तम अन्न प्रदान करते रहें। प्रभु अपने कल्याणमय हाथोंसे हमारी रक्षा सदा करते रहें ॥ २५ ॥

हे अग्ने ! हम आज तुम्हें जो समिधायें प्रदान करते हैं, उन्हें तुम स्वीकार करो। तुम इन समिधाओंको स्वीकार करके अच्छी तरह प्रदीप्त होओ। पर्वतके ऊंचे भागोंको अपनी तप्त रश्मियोंसे स्पर्श करो और सूर्यकी किरणोंके साथ मिलो। पर्वतोंके शिखरों पर भी यज्ञ करने चाहिए। इन यज्ञोंसे वायुमंडल शुद्ध होता है ॥ १ ॥

जो उत्तम कर्म करनेवाले शुद्ध और बुद्धिमान् हैं, उनमें जो सब मनुष्यों द्वारा प्रशंसित और अधिक पूज्य हैं, उनकी महिमाका वर्णन करना चाहिए। सभी मनुष्य उत्तम कर्म करें, पवित्र हों, बुद्धि और उत्तम कर्मोंको उत्तम रीतिसे करनेकी शक्तिको धारण करें ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२८ ईळेन्यं वो असुरं सुदक्ष—मन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥ ३ ॥
२९ सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्व—दध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥ ४ ॥
३० स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तो ऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥ ५ ॥
३१ उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥

अर्थ— [२८] (वः ईळेन्यं असुरं सुदक्षं) आप सबके लिये स्तुत्य, बलवान्, उत्तम दक्ष, (रोदसी अन्तः दूतं) द्युलोक और पृथिवीके मध्यमें दूतके समान कार्य करनेवाले (सत्यवाचं) सत्यभाषी, (मनुष्वत् मनुना समिद्धं) मनुष्योंके समान मनुने प्रदीप्त किये (अग्निं अध्वराय) अग्निको अहिंसामय कर्म करनेके लिये (सदं इत् संमहेम) सदा ही हम सुपूजित करते हैं ॥ ३ ॥

[२९] (सपर्यवः) अग्निकी सेवा करनेवाले (अभिज्ञु भरमाणाः) घुटने टेककर पात्रको भरते हुए (बर्हिः नमसा अग्नौ प्रवृञ्जते) दर्भोंको हविर्द्रव्यके साथ अग्निमें अर्पण करते हैं। हे (अध्वर्यवः) अध्वर्यु लोगो! (घृतपृष्ठं पृषद्वत्) घृतसे सिंचित स्थूल घृत बिंदुओंसे युक्त दर्भमुष्टिको (हविषा आजुह्वानाः मर्जयध्वं) हविके साथ हवन करनेके समय परिशुद्ध करके हवन करो ॥ ४ ॥

[३०] (स्वाध्यः देवयन्तः) उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले (रथयुः) रथकी कामना करनेवाले (देवताता दुरः वि अशिश्रयुः) यज्ञके अन्दर द्वारोंका आश्रय करते हैं। (समनेषु पूर्वीः) यज्ञोंमें पूर्वकी ओर अग्रभाग करके रहनेवाले जुहू आदिकोंको (शिशुं न मातरा) वत्सको गोमाताके (रिहाणे) चाटनेके समान (सं अंजन्) अग्निको घृतसे तथा (अग्रुवः न) अग्रगामी नदियाँ क्षेत्रोंको अपने उदकसे सिंचन करनेके समान सिंचन करते हैं ॥ ५ ॥

[३१] (उत दिव्ये योषणे) और दो दिव्य युवतियां (मही बर्हिषदा) बडी और दर्भोंपर बैठनेवाली (यज्ञिये उषासानक्ता) पूजनीय उषा और रात्री (पुरुहूते मघोनी) बहुतों द्वारा प्रशंसित होनेवाली तथा धनवाली (सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दूध देनेवाली गौके समान (नः सुविताय आ श्रयेतां) हमारे कल्याणके लिये हमें आश्रय देती रहें ॥ ६ ॥

भावार्थ— जो स्तुत्य, बलवान्, दक्ष, सत्यभाषी और सेवकके समान कार्यकर्ता होता है, उसे हिंसा और कुटिलतारहित कार्यमें बुलाकर उसका सत्कार करना चाहिए। उत्तम दूत या राजदूत सदा दक्षतासे कार्य करनेवाला, सत्यभाषी और अहिंसापूर्ण कर्मोंको करनेवाला हो ॥ ३ ॥

अग्निकी सेवा करनेवाले अध्वर्युगण घुटने टेककर अर्थात् नम्र होकर दर्भोंको हविद्रव्योंके साथ अग्निमें डालते हैं। दर्भोंको घीसे सिंचित करके उनकी आहुति अग्निमें डालनी चाहिए ॥ ४ ॥

उत्तम कर्म करनेवाले, देवताकी भक्ति करनेवाले तथा रथ आदि ऐश्वर्योंकी कामना करनेवाले मनुष्य यज्ञोंका आश्रय लेते हैं। यज्ञमें अध्वर्युगण, जिस तरह गायें अपने बछडोंको प्रेमसे चाटती हैं, अथवा नदियां जिस तरह क्षेत्रोंको सींचती हैं, उसी तरह प्रेमसे इस अग्निको घीसे सींचते हैं ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३२ विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥ ७ ॥
३३ आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥ ८ ॥
३४ तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥ ९ ॥
३५ वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥ १० ॥

अर्थ— [३२] हे (विप्रा जातवेदसा) ज्ञानी और धन उत्पन्न करनेवाले, (मानुषेषु कारू) मानवोंमें कुशलतावाले कर्म करनेवाले दिव्य होताओ ! (वां यजध्यै मन्ये) आपकी मैं यज्ञके लिये स्तुति करता हूं । (हवेषु नः अध्वरं ऊर्ध्वं कृतं) इन हवनोंमें हमारे हिंसा रहित यज्ञ कर्मको उच्च करो । (ता देवेषु वार्याणि वनथः) वे आप दोनों देवोंमें हमारे धनोंको पहुंचाइये ॥ ७ ॥

[३३] (भारती भारतीभिः सजोषा) भारती भारतियोंके साथ (देवैः मनुष्येभिः इळा अग्निः) देवों और मनुष्योंके साथ इळा रूप अग्नि और (सारस्वतेभिः सरस्वती) सारस्वतोंके साथ सरस्वती ये (तिस्रः देवीः) तीन देवियाँ (अर्वाक्) पास आजांय और (इदं बर्हिः आ सदन्तु) इस आसनपर बैठें ॥ ८ ॥

[३४] हे (देव त्वष्टः) त्वष्टा देव ! (रराणः) प्रसन्न होकर तू (नः) हमें (तत् तुरीयं पोषयित्नु वि स्य स्व) उस त्वरित पुष्टि करनेवाले वीर्यका प्रदान करो । हमें वीर्यवान बनाओ । (यतः) जिस वीर्यसे (कर्मण्यः सुदक्षः) कर्म करनेमें तत्पर दक्ष (देवकामः युक्तग्रावा) देवत्वको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञकर्ता (वीरः जायते) वीर होता है ॥ ९ ॥

[३५] हे (वनस्पते) वनस्पते ! (देवान् उप अव सृज) देवोंको यहां ले आ । (अग्निः शमिता हविः सूदयाति) अग्नि शान्ति करनेवाला होकर अन्नको पकाता है । (स इत् उ होता सत्यतरः यजाति) वह देवोंको बुलानेवाला अग्नि अधिक सत्य बननिष्ट होकर यज्ञ करता है । (यथा देवानां जनिमानि वेद) वह देवोंके जन्म वृत्तान्तको यथायोग्य रीतिसे जानता है ॥ १० ॥

भावार्थ— उषा और रात्री ये दो स्त्रियां हैं । ये दोनों स्त्रियां दिव्यगुणोंसे युक्त, ऐश्वर्यवाली और सभीके द्वारा प्रशंसित हैं । उत्तम गुणोंसे युक्त होनेके कारण सब लोग इनकी प्रशंसा करते हैं ॥ ६ ॥

कारीगर मनुष्योंमें कुशल हों और वे विशेष रूपसे ज्ञानी तथा धनको उत्पन्न करनेवाले हों । ऐसे कारीगरोंकी सब प्रशंसा करें । यज्ञ तथा अन्य सभी सत्कर्मोंके अवसर पर उनका सत्कार किया जाए ॥ ७ ॥

भारती देशकी भाषा है । मातृभाषाकी संज्ञा भारती है । इळा मातृभूमिको कहते हैं । सरस्वती सतत बहनेवाली संस्कृति है । मातृभाषा, मातृभूमि और मातृसभ्यता ये तीन देवियां हैं । इन तीनों देवियोंका सत्कार यज्ञमें होना चाहिए । जो भी कर्म मनुष्य करे, वह इन तीनों देवियोंकी उन्नति करनेकी दृष्टिसेही किए जाएं । ये तीनों देवियां अग्निके रूप हैं । मातृभाषा अग्निका रूप है, क्योंकि अग्निसेही वाणी उत्पन्न होती है । मातृभूमि भी अग्निकाही रूप है, क्योंकि भूमि अग्निकाही स्थान है और सभ्यता या संस्कृति भी अग्निके समान तेजस्वी होती है । इन तीनों देवियोंकी भक्ति सदा करनी चाहिए ॥ ८ ॥

मनुष्य अपने अन्दर ऐसा बलवर्धक और पोषक वीर्य उत्पन्न करें कि जिससे पुरुषार्थ करनेवाला, सावधानी और चतुराईसे कर्म करनेवाला, दिव्यगुणोंको अपने अन्दर धारण करनेकी इच्छा करनेवाला और यज्ञ करनेकी इच्छा करनेवाला वीर पुत्र उत्पन्न हो ॥ ९ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३६ आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥ ११ ॥

[३]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

३७ अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ १ ॥

३८ प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन् यदा महः संवरणाद् व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥ २ ॥

अर्थ— [३६] हे (अग्ने) अग्ने ! (समिधानः) प्रदीप्त होकर (अर्वाक्) हमारे समीप (इन्द्रेण तुरेभिः देवैः) इन्द्र और त्वरा करनेवाले देवोंके साथ (सरथं आयाहि) एक रथमें बैठकर आओ। (सुपुत्रा अदितिः) उत्तम पुत्रोंकी माता अदिति (नः बर्हिः आस्तां) हमारे इस आसनपर बैठे। (अमृताः देवाः स्वाहा मादयन्तां) अमर देव स्वाहाकारसे दिये अन्नसे आनंदित हो ॥ ११ ॥

[३]

[३७] (वः) आप (अग्निभिः सजोषाः) अन्य अग्नियोंके साथ रहनेवाले (यजिष्ठं) पूजा योग्य (अग्निं देवं) अग्नि देवको (अध्वरे दूतं कृणुध्वं) हिंसा रहित प्रशस्ततम कर्ममें दूत बनाइये। (यः मर्त्येषु निध्रुविः) जो मर्त्योंमें रहनेवाला, (ऋतावा) सत्यका पालन करनेवाला (तपः मूर्धा) तेजसे तपनेवाला (घृतान्नः पावकः) घी खानेवाला और पवित्रता करनेवाला होता है ॥ १ ॥

[३८] (यवसे अविष्यन्) घास खानेवाला (प्रोथत् अश्वः न) घोडा जैसा शब्द करता है, वैसा (यदा महः संवरणात् व्यस्थात्) बडे निरोधनसे अग्नि काष्ठोंपर रहता है [उस समय वह शब्द करता है और लकडियोंको खाता भी है] इस समय (अस्य शोचिः अनु) इसके प्रकाशके अनुकूल (वातः अनुवाति) वायु बहता है। (अध ते व्रजनं कृष्णं अस्ति) और तेरा मार्ग काला होता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जो दिव्यज्ञानी हों, उनकी संगति करनी चाहिए, उन्हें अपने घरमें बुलाकर उनका सत्कार करना चाहिए। उन्हें उत्तम उत्तम अन्न पकाकर देना चाहिए। उन्हें जो भी कुछ दिया जाए बडे प्रेमसे और सत्यपूर्वक अर्थात् छल और कपटसे रहित होकर दिया जाए। उनके जीवनकी बातें सुनकर उनके जीवनसे शिक्षा लेकर अपने भी जीवनको दिव्य बनाया जाए ॥ १० ॥

मनुष्य स्वयं तेजस्वी बने और शीघ्रतासे कार्य करनेवाले ज्ञानियोंकी संगतिमें रहें, उनके साथ रहकर कार्य करें। सभी स्त्रियां माता बनकर अपने वीर पुत्रके साथ आनन्दसे रहें, ऐसी वीर माताओंका सर्वत्र सत्कार हो। अमर देवगण भी उत्तम हवि तथा अन्न प्राप्त करके आनन्दित होते रहें। उत्तम पुत्रोंकी माता कभी दीन नहीं होती, वह सदा अदीन या अदितिही रहती है। वह हमेशा समर्थ होती है ॥ ११ ॥

जो स्वयं अग्निके समान तेजस्वी है, और जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता है, ऐसे सत्कारके योग्य पुरुषकोही दूत बनाना चाहिए। यह दूत मानवोंमें रहनेवाला हो, सत्यनिष्ठ हो, अपने तेजसे शत्रुको तपानेवाला हो, पवित्रता करनेवाला तथा घृतमिश्रित अन्न खानेवाला हो। राजदूतके पदपर ऐसेही व्यक्तिको नियुक्त करना चाहिए कि जो तेजस्वी मित्रोंके साथ रहता हो। जो हीन साथियोंके साथ रहता हो, ऐसे हीन पुरुषको महत्वके स्थान पर नहीं रखना चाहिए ॥ १ ॥

+

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३९ उदु॑ यस्य॑ ते॒ नव॑जातस्य॒ वृष्णो॑ ऽग्ने॒ चर॑न्त्य॒जरा॑ इधा॒नाः ।
अच्छा॒ द्याम॑रु॒षो धू॒म ए॑ति॒ सं दू॒तो अ॑ग्न॒ ईय॑से॒ हि दे॒वान् ॥ ३ ॥
४० वि यस्य॑ ते पृथि॒व्यां पाजो॒ अश्रे॑त् तृ॒षु यदन्ना॑ स॒मवृ॑क्त॒ जम्भैः॑ ।
सेने॑व सृ॒ष्टा प्रसि॑तिष्ट एति॒ यवं॑ न द॑स्म जु॒ह्वा॑ विवेक्षि ॥ ४ ॥
४१ तमिद्दो॒षा तमु॒षसि॒ यवि॑ष्ठ—म॒ग्निमत्यं॒ न म॑र्जयन्त॒ नरः॑ ।
नि॒शिशा॑ना॒ अति॑थिमस्य॒ योनौ॑ दी॒दाय॑ शो॒चिराहु॑तस्य॒ वृष्णः॑ ॥ ५ ॥

अर्थ— [३९] हे (अग्ने) अग्ने ! (नवजातस्य वृष्णः यस्य ते) नवीन उत्पन्न हुए तुझ बलशालीकी (अजराः इधानाः) जरा रहित ज्वालाएं (उत् चरन्ति) ऊपर उठती हैं । (अरुषः धूमः) इसका प्रकाशमान धूवां (द्यां अच्छ एति) द्युलोकमें सीधा जाता है । हे (अग्ने) अग्ने ! तू हमारा (दूतः देवान् हि सं ईयसे) दूत होकर देवोंके पास पहुंचता है ॥ ३ ॥

[४०] (यस्य ते पाजः पृथिव्यां) तेरा तेज पृथिवीपर (तृषु व्यश्रेत्) शीघ्रही फैलता है, (यत् अन्ना जंभैः समवृक्त) जब तू अपने काष्ठ रूप अन्नोंको अपने जबडों-ज्वालाओं-से खाने लगता है, तब (ते सेना इव सृष्टा प्रसितिः एति) तेरी सेना जैसी ज्वालाएँ तेरेसे छूटीं हुई धडाकेसे हमला करती है । हे (दस्म) दर्शनीय अग्ने ! तूं (युवं न जुह्वा विवेक्षि) जौ के खानेके समान ज्वालाओंसे काष्ठोंको भक्षण करता है ॥ ४ ॥

[४१] (यविष्ठं अतिथिं तं इत् अग्निं) अत्यंत तरुण, अतिथिके समान पूज्य इस अग्निको (दोषा उषसि) रात्रीके तथा उषा या दिनके समय (तं अस्य योनौ निशिशानाः नरः) उसके उत्पत्तिस्थानमें प्रदीप्त करनेवाले नेता लोग (अत्यं न) घोडेके समान (तं मर्जयन्तः) उसको शुद्ध करते वा सेवा करते हैं । (आहुतस्य वृष्णः शोचिः दीदाय) हवन हुए बलवान् अग्निकी ज्वाला अधिक प्रदीप्त होती है ॥ ५ ॥

भावार्थ— जिस समय अग्नि छोटेसे रूपमें रहती है, उस समय धीमें चलनेवाली हवा भी उसे बुझा सकती है, पर जब वही अग्नि बडा रूप धारण कर लेती है तब जोरसे चलनेवाली हवा भी उसे बुझा नहीं पाती, अपितु उसे और बढाकर उसे अनुकूलता प्रदान करती है । इसी तरह मनुष्य जब छोटा होता है, तब सब उसके साथ शत्रुताका व्यवहार करते हैं, पर जब वही मनुष्य बडा हो जाता है, तो उसके शत्रु भी उसके साथ मित्रताका व्यवहार करते हैं ॥ २ ॥

अग्निका ऊर्ध्वज्वलन सर्वत्र सुप्रसिद्ध है । उसकी ज्वालायें हमेशा ऊपरकी तरफ जाती हैं । वह स्वयं भी देवोंमें जाकर बैठता है, इस प्रकार अग्निके सभी कर्म उच्च मार्गसे होता है । इसलिए अग्नि सदाही प्रगति करनेवाला देवता है । उसकी गति कभी नीचेकी तरफ नहीं होती । इसीलिए अग्निकी गणना देवताओंमें होती है । जो मनुष्य अग्निकी तरह प्रगति करेगा, उसकी भी गणना देवोंमें हो सकेगी ॥ ३ ॥

जिस तरह अग्निकी ज्वालाएं सब पदार्थोंका विनाश करती हुई सर्वत्र जाती हैं, उसी प्रकार मनुष्योंकी सेनायें भी शत्रुओं पर हमला करके उन्हें विनष्ट करती हुई सर्वत्र संचार करें ॥ ४ ॥

चाहे दिन हो या रात हो, सदाही अतिथिकी सेवा करनी चाहिए । जिस प्रकार घुडदौडके लिए घोडे पालनेवाले लोग घोडोंकी सेवा दिनरात करते हैं, उसी तरह मनुष्य भी अतिथिकी दिनरात सेवा करे । अथवा जिस तरह घोडोंको हृष्टपुष्ट किया जाता है, उसी तरह तरुणोंको भी हृष्टपुष्ट किया जाना चाहिए । तरुण राष्ट्रके आधार होते हैं, अतः उन्हें अधिक कार्यक्षम और तेजस्वी बनानेके लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४२ सुसंदृक् ते स्वनीक प्रतीकं वि यद् रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥ ६ ॥
४३ यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥ ७ ॥
४४ या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत् सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥ ८ ॥
४५ निर्यत् पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥ ९ ॥

अर्थ— [४२] हे (स्वनीक) उत्तम तेजस्वी अग्ने ! तू (यत् रुक्मः न) जब सूर्यके समान (उपाके रोचसे) समीप स्थानमें प्रकाशित होता है, तब (ते प्रतीकं सुसंदृक्) तेरा रूप उत्तम दर्शनीय होता है, तथा (ते शुष्मः दिवः तन्यतुः न एति) तेरा प्रकाश विद्युत्के समान फैलता है। (चित्रः सूरः न) दर्शनीय सूर्यके समान (भानुं प्रति चक्षि) अपनी दीप्तिको भी तू दर्शाता है ॥ ६ ॥

[४३] हे (अग्ने) अग्ने ! (अग्नये वः स्वाहा) तुझ अग्निके लिये दिये हुए हविसे तथा (इळाभिः घृतवद्भिः हव्यैः यथा परिदाशेम) गौओंके घृतसे मिश्रित हवन द्रव्योंसे जब हम तेरी सेवा करते हैं, तब तू भी (तेभिः अमितैः महोभिः) उन अपरिमित तेजोंसे (शतं आयसीभिः पूर्भिः नः नि पाहि) सैकडों लोहेके किलोंसे हमारी सुरक्षा कर ॥ ७ ॥

[४४] हे (सहसः सूनो जातवेदः) बलसे उत्पन्न होनेवाले वेदोत्पादक अग्ने ! (दाशुषे ते या वा सन्ति) दाताके लिये हितकारी जो तुम्हारी ज्वालाएं हैं, तथा जो (अप्रधृष्टाः गिरः वा) अहिंसित वाणियां हैं, (याभिः नृवतीः उरुष्याः) जिनसे सुपुत्रवती प्रजाका तुम रक्षण करते हो, (ताभिः नः स्मत् सूरीन् जरितॄन् नि पाहि) उनसे हमारे विद्वानों और स्तोताओंको सुरक्षित कर ॥ ८ ॥

[४५] (यत् शुचिः स्वया तन्वा कृपा) जब पवित्र अग्नि अपनी फैली हुई ज्वालारूपी कृपासे (रोचमानः) प्रदीप्त होता है तब (पूता इव स्वधितिः) तीक्ष्ण शस्त्रके समान वह (निः गात्) बाहर जाता है, अरणियोंसे बाहर जाता है। (यः उशेन्यः) जो कामना योग्य प्रिय (सुक्रतुः पावकः) उत्तम कर्म करनेवाला, पवित्रता करनेवाला (मात्रोः आ जनिष्ट) दोनों अरणिरूप माताओंसे उत्पन्न हुआ वह (देव यज्याय) देवोंके यजन करनेके लिये ही हुआ है ॥ ९ ॥

भावार्थ— यह अग्नि जब प्रदीप्त होता है, तब वह सूर्यके समान तेजस्वी होनेके कारण उत्तम और दर्शनीय रूपवाला होता है। इसका तेज या प्रकाश विद्युत्के समान सर्वत्र फैलता है। उस समय तेजस्वी सूर्यके समान इस अग्निकी दीप्ति सर्वत्र फैलती है ॥ ६ ॥

हे अग्ने ! जब हम प्रजायें अनेक तरहकी हवियों तथा अन्नोंसे तेरा सत्कार करती हैं, तब तू भी अपने अपरिमित तेजोंसे तथा सैकडों लोहेके किलोंसे हमारी रक्षा कर। देशमें जितने भी नगर हों, वे सभी सुरक्षित हों, उन पर शत्रु आक्रमण न कर सके ॥ ७ ॥

यह अग्नि बलका पुत्र है, अर्थात् बलसे उत्पन्न होनेवाला है। इसकी ज्वालायें दाताके लिए हितकारी हैं। जो इस अग्निकी ज्वालाओंमें हवि प्रदान करता है, उसका हित ये अग्निकी ज्वालायें करती हैं। वाणियां अहिंसित हों। वाणीका प्रयोग मनुष्य इस प्रकार करे कि उससे किसीको कष्ट न हो। वाणीका प्रयोग मनुष्य विवेकपूर्वक करे ॥ ८ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४६ एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

[४]

(ऋषिः- मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्दः- त्रिष्टुप् ।)

४७ प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥ १ ॥

४८ स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥ २ ॥

अर्थ—[४६] हे (अग्ने) अग्ने ! (एता सौभगा नः दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें दे । (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) और उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान् पुत्रको हम प्राप्त करें । (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च संतु) सब धन ईश्वर भक्तोंके लिये मिलते रहें । (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

[४]

[४७] (वः शुक्राय भानवे सुपूतं) तुम सब शुद्ध तेजस्वी अग्निके लिये उत्तम पवित्र (हव्यं मतिं च प्रभरध्वं) हव्य पदार्थ तथा उत्तम बुद्धि अर्थात् स्तोत्र भर दो, कर दो, गाओ (यः दैव्यानि मानुषा विश्वानि) जो दिव्य और मानुष ऐसे सब (जनूंषि अन्तः विद्मना जिगाति) प्राणियोंके जन्मोंमें अन्दर ही अन्दर ज्ञानसे संचार करता है ॥ १ ॥

[४८] (सः अग्निः गृत्सः तरुणः अस्तु) वह अग्नि बडा बुद्धिमान और तरुण है । (यतः मातुः यविष्ठः अजनिष्ट) जब माता रूप अरणियोंसे वह तरुण उत्पन्न होता है । (यः शुचिदन् वना संयुवते) जो तेजस्वी दांतवाला अग्नि वनोंके साथ संमिलित होता है, लकडियोंको जलाता है, तब वह (भूरिचित् अन्ना सद्यः इत् सं अत्ति) बहुत अन्नोंको तत्काळही खाजाता है ॥ २ ॥

भावार्थ— जिस समय, अग्नि दोनों अरणियोंसे उत्पन्न होता है, उस समय उसका रूप इस तरह चमकता हुआ होता है कि जिस तरह तीक्ष्ण शस्त्र या तलवार म्यानसे बाहर आने पर चमकती है । जिस तरह दो अरणीरूप मातापितासे उत्पन्न हुआ अग्नि चमकता या तेजस्वी होता है, उसी तरह मातापितासे उत्पन्न हुआ पुत्र तेजस्वी होकर सर्वत्र चमकता रहे ॥९॥

हे अग्ने ! हमें सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों, हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें । हम उत्तम बुद्धिमान् और उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको प्राप्त करें । हमें पुरुषार्थी और बुद्धिशाली पुत्र प्राप्त हो । ईश्वरकी भक्ति करनेवालेको सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हो । ऐसे ईश्वरभक्तको तू कल्याणकारक उपायोंसे सुरक्षित कर ॥ १० ॥

हे मनुष्यों ! शुद्ध अग्निके लिए उत्तम पवित्र और हवनीय पदार्थ अर्पण करो और उत्तम स्तोत्र गाओ । वह अग्नि सब दिव्य और मानुष तथा अन्य प्राणियोंके अन्दर भी ज्ञानपूर्वक संचार करता है ! अग्नि सब प्राणियोंमें व्यापक है ॥१॥

अरणीरूप माताका पुत्र अग्नि उत्पन्न होते ही बहुत तेजस्वी और उत्साही हो जाता है । मनुष्यका पुत्र भी इसी तरह तरुण और सदा उत्साही रहे । वह अग्निकी तरह उत्तम उत्तम अन्नोंको खाकर बुद्धि, बल और उत्साह प्राप्त करे ॥ २ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

४९ अस्य देवस्यं संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जंगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुंषेयीमुवोच दुरोकंमग्निरायवे शुशोच । ॥ ३ ॥
५० अयं कविरकंविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्रं जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनंसः स्याम ॥ ४ ॥
५१ आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनंश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥ ५ ॥
५२ ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरे रीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥ ६ ॥

अर्थ— [४९] (अस्य देवस्य अनीके संसदि) इस देवके तेजस्वी यज्ञ सभामें (श्येतं यं मर्तासः जगृभ्रे) जिस तेजस्वी अग्निको मानवोंने धारण किया, जिसकी सेवा की। (यः पौरुषेयीं गृभं नि उवोच) जो अग्नि मनुष्यों द्वारा की गयी सेवाका स्वीकार करता है। वह (अग्निः आयवे दुरोकं शुशोच) अग्नि आयुके लिये सेवन करनेके लिये अशक्य रीतिसे प्रकाशित होता है। अत्यंत प्रकाशता है, जो प्रकाश सहन करना अशक्य है ॥ ३ ॥

[५०] (कविः प्रचेता अमृतः) ज्ञानी विशेष बुद्धिमान् अमर ऐसा (अयं अग्निः) वह अग्नि (अकविषु मर्तेषु निधायि) अज्ञानी मानवोंमें रखा गया है। हे (सहस्वः) बलवान् अग्ने ! (त्वे सुमनसः स्याम) तेरे विषयमें हम सदा उत्तम बुद्धि धारण करनेवाले हैं। इसलिये (सः त्वं अत्र नः मा जुहुरः) वह तू यहां हमें विनष्ट न कर ॥४॥

[५१] (यः देवकृतं योनिं आ ससाद) वह अग्नि देवोंद्वारा बनाये स्थानपर बैठता है, क्योंकि (हि क्रत्वा अग्निः अमृतान् अतारीत्) वह अग्नि अपने पुरुषार्थ प्रयत्नसे अमर देवोंको भी सुरक्षित रखता है। (विश्वधायसं तं) विश्वका धारण पोषण करनेवाले उस अग्निको (ओषधीः वनिनः च भूमिः च गर्भं बिभर्ति) औषधियां, वृक्ष तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं ॥ ५ ॥

[५२] (अमृतस्य भूरेः अग्निः ईशे हि) अन्नदान बहुत करनेके लिये अग्नि समर्थ है। (सुवीर्यस्य रायः दातोः ईशे) उत्तम वीर्ययुक्त धन देनेमें अग्नि समर्थ है। हे (सहसावन्) बलवान् अग्ने ! (वयं अवीराः त्वा मा परिषदाम) हम पुत्रहीन वा वीरताहीन होकर तेरी सेवा करनेके लिये न बैठें। (अप्सवः मा) रूपरहित होकर हम न बैठें। (अदुवः मा) भक्तिहीन भी हम न हों ॥ ६ ॥

भावार्थ— मनुष्य इस तेजस्वी अग्निको उत्पन्न करके हवि आदि अनेक तरहके द्रव्योंसे उसकी सेवा करते हैं। अर्थात् यज्ञ करनेवाले मनुष्य अग्निको प्रदीप्त करके उसमें पोषणकारक द्रव्योंकी आहुतियां देते हैं। इन आहुतियोंके अग्निमें पडने पर वह इतना प्रकाशित होता है कि उसका तेज सहना मनुष्योंके लिए असंभव हो जाता है ॥ ३ ॥

मनुष्य अग्निके समान तेजस्वी, ज्ञानी, बुद्धिमान् और अमर हो। यदि वह अज्ञानी मनुष्योंमें भी रहने लगे, तो भी उसके विषयमें उत्तम विचार ही मनमें धारण करना योग्य है, क्योंकि वह ज्ञानी मनुष्य कभी भी किसीका नाश नहीं करता। ज्ञानी मनुष्य सबकी रक्षा करता है ॥ ४ ॥

जो अपने प्रयत्नोंसे सज्जनोंको संकटसे तारता है अर्थात् सज्जनों पर आए हुए संकटोंको अपने प्रयत्नोंसे दूर करता है, वह मनुष्य देवोंके द्वारा निर्मित श्रेष्ठ स्थानोंमें विराजता है। सबका धारण और पोषण करनेवाले अग्निको जिस प्रकार सभी तरहकी औषधियां, वृक्ष तथा भूमि अपने अन्दर धारण करती हैं, उसी तरह जो सबका धारणपोषण करनेवाला होता है, उसे सभी लोग अपने अन्तःकरणमें आदरसे रखते हैं ॥ ५ ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

५३ परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातम—स्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥ ७ ॥
५४ नहि ग्रभायारणः सुशेवो ऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित् स एत्या ऽऽ नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥ ८ ॥
५५ त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ ९ ॥
५६ एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्य—पि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ १० ॥

अर्थ— [५३] (अरणस्य रेक्णः परिषद्यं हि) ऋण रहित मनुष्यका धन पर्याप्त होता है। (नित्यस्य रायः पतयः स्याम) इसलिये हम नित्य रहनेवाले धनके स्वामी बनें। हे अग्ने! (अन्यजातं शेषः न अस्ति) अन्य मनुष्यका पुत्र औरस पुत्र नहीं कहलाता। (अचेतानस्य पथः मा विदुक्षः) निर्बुद्धके मार्गको हम न जानें ॥ ७ ॥

[५४] (अन्य-उदर्यः सुशेवः अरणः) दूसरेका पुत्र सुखसे सेवा करनेवाला और ऋण न करनेवाला होनेपर भी वह पुत्र करके (ग्रभाय नहि) ग्रहण करनेके योग्य नहीं होता, इतना ही नहीं परंतु वह (मनसा मंतवै ऊं) मनसे माननेके लिये भी योग्य नहीं है। (अध ओकः चित् पुनः इत् स एति) क्योंकि वह अपने निज पिताके घरके पास ही खींचा जाता है। अतः (नव्यः वाजी अभीषाट् नः आ एतु) नवीन बलवान् शत्रुका पराभव करनेवाला पुत्र ही हमें प्राप्त होवे ॥ ८ ॥

[५५] हे (अग्ने) अग्ने! (त्वं वनुष्यतः नः निपाहि) तू हिंसकोंसे हमें बचा। हे (सहसावन्) बलवान्! (त्वं अवद्यात् नः पाहि) तू पापसे हमें बचा। (त्वा ध्वस्मन्वत् पाथः अभिएतु) तेरे पास निर्दोष अन्न पहुंचे। (स्पृहयाय्यः सहस्री रायः सं एतु) हमारे पास प्राप्त करने योग्य सहस्रों प्रकारका धन आ जाय ॥ ९ ॥

[५६] हे (अग्ने) अग्ने! (एता सौभगा दिदीहि) ये उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम ऐश्वर्य हमें प्रदान कर। (अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम) हम उत्तम कर्म करनेवाले उत्तम बुद्धिमान् पुत्रको प्राप्त करें। (विश्वा स्तोतृभ्यः गृणते च सन्तु) सब धन ईश्वर भक्तोंको मिलते रहें। (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) तुम हमें सदा कल्याण करके सुरक्षित रखो ॥ १० ॥

भावार्थ— मनुष्योंके पास बहुत अन्न हो, उत्तम पराक्रम करनेकी शक्ति हो। वे पुत्रहीन तथा वीरवाहीन अर्थात् भीरु न बनें, कुरूप तथा सौन्दर्यहीन न हों। भक्तिहीन भी न हों। मनुष्य धनवान्, शूर, पराक्रमी, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान्, पुत्रपौत्रवान्, धैर्यवान्, सुन्दर, शोभायुक्त और भक्तिमान् हों। मनुष्य मलिन न रहें। अपना सौन्दर्य बढावें, शृंगार बढावें, अपने घर, उद्यान और शरीरकी सजावट करके शोभा बढावें। सभी सुन्दर रहें ॥ ६ ॥

जो मनुष्य ऋण नहीं करता, उसका धन पर्याप्त होता है। हम भी ऋणसे रहित होकर पर्याप्त धनके स्वामी बनें। मनुष्य धनका स्वामी होकर औरस पुत्रका भी स्वामी हो, क्योंकि दत्तक पुत्र औरस पुत्रके समान नहीं हो सकता। कोई भी मूर्ख मनुष्यके मार्गसे न जाए ॥ ७ ॥

दूसरेका पुत्र दत्तकके रूपमें लें और यदि वह पुत्र उत्तम सेवा करनेवाला तथा ऋण न भी करनेवाला हो, तो भी वह औरस पुत्रके समान नहीं हो सकता। जो दूसरेका है, वह दूसरेका ही रहेगा। मनसे भी उसे औरस पुत्र नहीं माना जा सकता, क्योंकि उसका मन तो उसके वास्तविक मातापिताकी ओर ही खिंचकर जाएगा, उसका मन अपने दूसरे पिताके घरमें रह नहीं सकता। इसलिए हमें ऐसा ही औरस पुत्र चाहिए जो शत्रुका पराभव करनेवाला हो ॥ ८ ॥

हे अग्ने! तू हमें हिंसकोंसे बचा, तू हमें पापसे बचा। हम भी तुझे निर्दोष अन्न प्रदान करें। हमारे पास प्राप्त करने योग्य अनेक तरहके धन प्राप्त हों ॥ ९ ॥

हे अग्ने! हमें सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों, हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् बनें। हम उत्तम बुद्धिमान् और उत्तम कर्म करनेवाले पुत्रको प्राप्त करें। हमें पुरुषार्थी और बुद्धिवाली पुत्र प्राप्त हो। ईश्वरकी भक्ति करनेवालेको सब तरहके ऐश्वर्य प्राप्त हों। ऐसे ईश्वरभक्तको तू कल्याणकारक उपायोंसे सुरक्षित कर ॥ १० ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu